लेखक की प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास

[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]

[illegible]

[illegible]	[illegible]

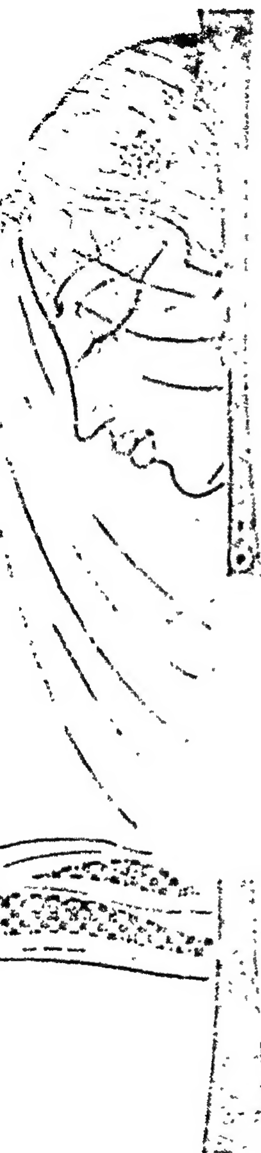
[illegible]

[illegible]	[illegible]

[illegible]

[illegible]	[illegible]

[illegible]



मुख सरोवर के हंस

शैलेश मटियानी

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

MUKH-SAROVAR KE HANS

(a novel)

by

Shailesh Matiyani

Rs. 4.00

कथा-सार

गढ़ी चम्पावत के छत्रधारी खड्गधारी राजा कालीचन्द ने आठवाँ विवाह किया था। सन्तान-मुख देखने, पितर-ऋण उतारने के लिए। आठवीं रानी रुपाली, डोटी देश की राजकुमारी, कुमाऊँ-पछाऊँ की राजधानी गढ़ी चम्पावत नगरी में आई। अप्रतिम-रूप, उद्दाम-यौवन और असाधारण मानी मन लिए।

इधर कुमाऊँ के बाईस सूर्य-से बफौलबन्धु भी, महरगाँव की एक लली दूधकेला से शादी करके, गढ़ी चम्पावत नगरी लौटे। उन्होंने अपने पराक्रम से पंचनाम देवों के मन्त्र-पुत्र मल्लों को पराभूत कर, गढ़ी चम्पावत नगरी के राज-द्वारों का चौकीदार बनाकर रखा।

—बाईस भाई बफौलों के रूप-शौर्य को देखते ही, आठवीं रानी रुपाली का चपल मन कामुकता की चंचल-धार में, तैरना न जानने वाली मछली-सा, बह गया। वह बाईस भाई बफौलों की बाईस गद्दों-तकियों वाली सेज की एक सोने वाली बनने, बाईस मृदंगों की एक थाप, बाईस स्वरों की एक रागिनी बनने—कामातुर हो, बफौलों के महल में गई।

सत् रह जाए, बफौलीकोट की धरती-पार्वती का। बफौलों ने उससे कहा—"माँ हो, रक्त-धार नहीं, दूध-धार दो।" और, पुण्य सहेज लिया, पाप ठुकरा दिया।

चोट-खाई नागिन-सी रुपाली रानी लौटी। बफौलों के आँगन में बाईस मुक्के छाती में मारे, बाईस उल्टी हथेलियाँ माथे से लगा गई—"बफौलों का वंश-बीज-नाश करूँगी; तभी अन्न-दाना, घूंट-पानी ग्रहण

करूँगी !"

और उसने यही किया ।

इसी कथा-क्रम में महारानी [illegible] आती है, जिसका नाम आते ही [illegible] जीवन और प्रफुल्ल, सौरभ और उज्ज्वल होता है। [illegible] रानी [illegible] और राजा [illegible] की खातिर यहीं [illegible] नगरी भी [illegible] कर गई, [illegible] को प्रस्थान कर गई, [illegible] में [illegible] को राजवंशी-[illegible] की गोद में मिला, कि [illegible] के [illegible] फेर में फँसते हैं, कि [illegible] की दुनिया [illegible] और [illegible] करती है, मगर [illegible] की [illegible] में [illegible] बना देती है !

एहो, कथा के लाड़लो !

तुम्हारे घर के आँगन में दूधमुखी बालक रेशम-डोरी का पालना झूलता और तुम्हारे गाँव के सरोवर में सूर्यमुखी-कमल खिलता रहे, कि चंचला, चपला, चुट्टुली रानी डोटियाली के द्वार का पहरुवा सो जाए, गोठ का बैल खो जाए, कि हट पापिनी, चार हाथ दूर, बारह पत्थर बाहर जा ! क्या दाँए सैन किए, क्या बाँए वचन बोली—

"सुनो हो, मेरे प्यारे, बाईस भाई बफौलो ! तुम्हारे नाम पर बाईस लटियाँ करूँगी, बाईस फुन्ने लगाऊँगी। बाईस रंग की चोली, बाईस पाट का घाघरा पहनूंगी। और, सुनो—द्वारिका के श्री कृष्ण ग्वाले की सोलह हजार रानियाँ थीं, सो वह अवतारी भगवान् कहलाया था। मुझ एक रानी डोटियाली के तुम बाईस भाई बफौल सेज के सोने वाले बनोगे, कि गढ़ी चम्पावत नगरी में एक अवतार मेरा भी कहलाएगा !…"



स्वर्गीया भाभी-माँ को

मुख-सरोवर के हंस

परिभाषा और निवेदन

इस उपन्यास की रीढ़-अस्थि लोक-कथा का मुख्य सूत्र यों है, कि एक बार वेदमुखी विधाता ने एक त्रिया की रचना की। मोहिनी-सोहिनी-तिरिया की। बाद में, विष्णु, महेश और इन्द्रदेव की दीठ से बचाने के लिए, उसे काठ की तिरिया का रूप दे दिया। मगर उस काठ की तिरिया पर भी तीनों लोकों के स्वामी, गहरे समुद्र की लहर-शय्या पर आसन लेने वाले भगवान् विष्णु तो मोहित हुए ही, ऊँचे हिमाल देश के गगनचुम्बी-शिखरों पर ताण्डव-नृत्य के नचय्या प्रलयंकर शंकर भी आसक्त हो गए। अन्त में ब्रह्मा से भी न रहा गया, कि संभवतः, इस काष्ठ-त्रिया में भी कोई ऐसी विशेषता अवश्य है, जिसने शंकर-विष्णु को तक सम्मोहित कर लिया…और उस काठ की तिरिया के लिए ब्रह्मा-विष्णु महेश तथा इन्द्र देव में संग्राम छिड़ गया।

तो इस छोटी-सी भूमिका में प्रस्तुत है, चंचला-चपला-चटुली तिरिया और मुख-सरोवर के हंसों की परिभाषा।

* * *

'निरिया' की परिभाषा यों है, कि जब नारी की स्तन-कुम्भी, उदर-वल्ली और नितम्ब-गुरी[1]—ये तीनों विगलित हो, नहीं रह पातीं, तब वह नंगना-नग्ना और नहुली (नर-गुल्मी-नर्तकी) बन जाती है।

यों, इसी प्रकार 'नारी' और 'निरिया' में है, कि नारी मधुर-ममत्व और निरिया उद्दाम-अनर्गलित-यौवन की प्रतीक होती है।

जो कहीं-कहीं 'बैस भाई बफौल' के रूप में भी प्रचलित है। खेतों को गोड़ने निराने के सामूहिक-श्रम-पर्व पर, यह कथा 'हुड़किया-बौल' में भी गा जाती है, जिसमें लोक-गायक 'बैस भाई बफौला रे, बफौला भाई हो गाते हुए दोपुड़िया-हुड़क पर हाथ मार देता है। और लम्बी रातों व कथा-वेला रमौलिया बाईस भाई बफौलों की कथा को अपनी वाणी वचन, अपने कण्ठ का स्वर देता है।

'मुख-सरोवर के हंस' उपन्यास-कृति के आन्तर-बाह्य, दोनों परिवे आंचलिक हैं, अस्तु, इसकी भाषा, भाव-भूमि और कथन-शैली—तीन आंचलिकता से अभिषिक्त हैं। लोक-कथात्मकता, कथन-शैली औ शिल्पगत-आंचलिकता को सहज-सरस रूप में प्रस्तुत करने की, मैंने शक्ति भर चेष्टा की है। भाषा, भावभूमि और कथन-शैली में व्याप्त-निहि आंचलिकता, ठेठ मौलिकता के बाद भी, पाठकों के लिए बोध-गम्य र यह मेरा अभीष्ट रहा है। आंचलिक शब्दों को कम, पर आंचलि (लोक-कथापरक) रूप-शैली को अधिक महत्त्व मैंने दिया है, तथा- आंचलिक शब्दों की ध्वनि-लय और उनके बोध-वैशिष्ठ्य के अनुरू हिन्दी के शब्द देने, या उन्हें हिन्दी के साहित्य-कोश तक ले आने प्रयास किया है। आशा है, रसमना पाठकों को इस कृति से लोकोत्त आनन्द उपलब्ध होगा।

और, अब शेष रह गई 'मुख-सरोवर के हंसों' की बात। ल दूधकेला की भोर की किरन लगे से खिलने वाली कुसुम-कली- मुखाकृति को रजत-मेखों का आधार देने वाली दन्त-पाटी को ही लोकगाथापरक-कृति में सरोवर के श्वेत हंसों की पाँत में बिठाया गया।

* * *

अन्त में, एक स्वीकृति।

लोक-कथा-गायन की परम्परा, तो मेरे पितरों (दिवंगत और जीवि

लोक-गायकों) की परम्परा है। मैं भी उसी परम्परा का पूत हूँ। किशोरावस्था तक वन का ग्वाला, खेतों का घसियारा बना रहा, तो मैंने किसानों की इस परम्परा का यथावत्-पालन किया करता था—वन-खेतों में ठौर-ठौर लोक-कथाओं के छन्दों को अपना कंठ दिया करता था।

पूर्वार्द्ध

1

अपनी ही सर्जना का प्रश्न-चिह्न

एक समय,

काल ने क्या करवट, पवन ने क्या दिशा बदली, कि पंचाचूली पर्वत-श्रेणी की गुरुस्थली में पंचनाम देवों की भाइयों की भेंट, केदार की यात्रा हुई।

पंचनाम देव कौन ?

गोल्ल, गंगनाथ, भोला, महावली हरु और सैमराजा।

काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के पाँच लोक-देवता, कि पड़ती-संध्या, जगती-भोर में जिनके नाम की पहली धूप-वाती होती है, कि पहली फूल-पाती चढ़ती है, कि हम तुम्हारा नाम लेते हैं !

एहो, पंचनाम देवो !

कथा कहने को दिवस और निशा और, कि पहले तुम्हारी सेवा में युगल-हाथ, नत-माथ करते हैं, कि ऊंची अटारी, नीची पिटारी पर

क्या भरनी भरी, कि गुरु के नाम की धूनी जलाई, अलख लगाई, भभूत रमाई, कि प्रणाम करते हैं मामू महेश्वरीनाथ, गुरु निर्मलीनाथ को, कि जिनने हमारा मुंड मूंड़ा, कान फाड़े। विद्या का भार, वेदों का सार दिया। हाथ में चमत्कारी-चिमटा, माथ में त्रिलोक-व्यापी त्रिपुण्ड दिया। ज्ञान का कमण्डलु, ध्यान का त्रिशूल थमाया, कि कन्धे पर खरुवा[1] की झोली दी और हाथ में संन्यासी-सोंटा दिया।

गुरुओं के नाम की अलख पुकार के, पंचनाम देवों ने चार चुटकी खाक पंचाचूली की वनस्थली की ओर उड़ाई, कि इस वनस्थली को भी हमारा नमस्कार है, जिससे बांज-फल्यांट, चीड़-देवदार की समिधाएँ बटोरकर हमने गुरुओं के नाम की धूनी जगाई, अलख लगाई।

चार चुटकी खाक का क्या उड़ना, लाख की सौगात, देवों की करामात, कि आज पंचाचूली की वनस्थली में भरपूर बहार, इस पार, उस पार डाल-डाल झूल, डाल-डाल फूल गई, कि प ात-पात फल लग गए।

जिस पंचाचूली पर्वत की वनस्थली में लंगूर-वानर घिघारू-हिंसालू[2] को तरसते थे, आज फलों का खाना, फलों का हगना करने लगे।

पंछी कफू की 'कफू', न्योली की 'नेहू' से सघन-वनांचल मुखर हो गया, कि प्रकृति-नटी आज छम्-छम् नाचने, थैया-थैया थिरकने लगी, कि जनम-जोगी, करम-जोगी, पंचनाम देवों का चित्त चलायमान हो गया।

पंचनाम देवों ने सोचा—"दिन आए, मास लगे। मास गए, बरस लगे। हमारा सारा जनम खाक के ओढ़ने, खाक के बिछाने में चला गया, कि हमारा जोगी-मन न रंग से रंगा, न रस से भीगा।···पुरवैया बयार चली, हमारे हिया हिलोर न उठी, ठण्डी पनार[3] बही, हमारे जिया पुलक

---

1. एक वन्य-तागा, जो संन्यासियों के लिए पवित्र माना जाता है।

2. दो पहाड़ी वन्य-फल।

3. 'पनार' वैसे यहाँ एक नदी भी है, अलमोड़ा के पूर्वांचल में, पर यहाँ 'सरिता' के अर्थ में ली गयी है।

एक दिशा पूर्व, कि एक दिशा पश्चिम। एक से सूर्य का उगना, एक में सूर्य का डूबना।

एक दिशा उत्तर, कि एक दिशा दक्षिण—एक की चोटी गंग-स्वामी शम्भुनाथ का वास, एक की गहरी सिंधु-लहरों में रावण की सुवर्ण-लंका।

चार दिशाओं में चमत्कार क्या ?

चार भभूत-गोलों का फूटना, चार मल्लों का उपजना, कि धरती धँस गई, आकाश काँप उठा।

मल्ल क्या नामधारी ?

पूर्व का पूर्विया, पश्चिम का पश्चिमिया, उत्तर का उत्तरिया और दक्षिण का दक्षिणी मल्ल नामधारी।···

चारों मल्ल एकत्र हो, पंचनाम देवताओं की सेवा में हाजिर-नाजिर[1] हुए—"एहो, पंचनाम देवो! जनम दिया है, हमारे जनम-स्वामी हो, कि अब हम करम क्या करेंगे—तुम्हारे बुलाए से आएँगे, कि मुंह का वचन नहीं टालेंगे।···आज्ञा हो, स्वामिनो, कि किस हेतु से हमारी माया-रचना, काया-सर्जना हुई ?"

पंचनाम देव हिया-हरस बोले—"सुनो हो, चार भाई मल्लो! धूनी जलाते, अलख जगाते और भभूत रमाते, वैरागी जीवन बियावान रंगीली कोठी[2] सुनसान हो गई है हमारी। खाक का रमाना, खाक का उड़ाना क्या हुआ, उमंगें ही खाक हो गईं। विहँसना बिसर, किलकना भूल गए। सो, आज तुम चार भाई मल्ल, चमत्कारी, महामुंडधारी—चार घड़ी इस पंचाचूली में 'जटा से जमीन पटक, अँगुली से आकाश उठा' की कुश्ती खेल, हमारा उदास मन बहला जाओ, कि चार घड़ी की रम्मतं-झम्मत कुश्ती में काल एक करवट ले ले, पवन एक हिलोर।···"

---

1. उपस्थित।
2. मन

थी, ये चार और पंचाचूली पर्वत कहाँ से पैदा हो गये ?···

*　　　*　　　*

आज पंचाचूली की गुरुस्थली में—

पंचनाम देव बोल वोलना, हाथ हिलाना विसर गए, कि यह तो वही कथनी हो गई, कि 'वेटे जनमे, वंश को और फल लगे, वृक्ष को भारी हो गए।······'

ये मल्ल क्या रचे हमने, कि जी को जंजाल, जान को बवाल हो गए हैं। रम्मत-झम्मत की कुश्ती क्या खेली है, गुरुस्थली की वनस्थली में फलों के नाम के पात भी मिट्टी में मिला दिए गए हैं। अब भला, चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन कहाँ से लाएँ हम ?

"एहो, स्वामिनो !" मल्ल हाथ-भर आगे सरक आए—"पल वढ़ता है, कि पेट वढ़ता है हमारा। आप तो जनम के विचार-योगी, ध्यान-जोगी हैं, सो आपके ज्ञान-ध्यान को युग-युग पड़े हैं। अस्तु, स्वामिनो !······ गुरु-ज्ञान, धूनी-ध्यान फुर्सत से लगाते रहना, इस समय तो हमारे पेट की बाधा हरो, कि हम एक डकार भरेंगे, एक तुम्हारा नाम लेंगे।···"

जान फँसी फँसीटे में, राख फँसी लँगोटे में, कि पंचनाम देवों को गुरु-स्नान को लिए अपने हाथ के लोटे भारी पड़ गए।···

बोले—"एहो, वीरश्रेष्ठ मल्लो ! राह क्यों भूलते हो, मति क्यों विसरते हो ? हम खाकधारी जोगी, हमारे पास कहाँ चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन ? यहाँ तो खाक का पहनना-ओढ़ना, खाक का लेना-देना है, कि गुरु के नाम पर दिया-वाती जलाते हैं, फूल-पाती चढ़ाते हैं। किसी दिन चार गास को घर-घर की अलख जगा ली, किसी दिन उपवास कर लिया।···हमारे पास ये भिक्षाधनी-झोलियाँ हैं, कर्म के कमण्डलु, ध्यान के चिपटे हैं, वस ! सो, वीरो !···चाहो, तो हमसे गुरु-ज्ञान माँगो, धूनी-ध्यान माँगो, कि तुम्हारे मुंड मूंड देते हैं, कान फाड़ देते हैं और

सोंटा हाथ, त्रिपुण्ड माथ दे देते हैं। पाँच जनम-जोगी, करम-जोगी हम हैं, कि चार खाकधारी जोगी तुम बन जाओगे। द्वार-द्वार माई के नाम पर सत पुकारेंगे, दाता के नाम की अलख जगायेंगे, कि ओरी माई, ओरे दाता !···भिक्षा दो, भिक्षा लो ! दान दो, ज्ञान पाओ।···"

मल्लों ने आकाश को कण्ठों की हुँकार से, धरती को पाँवों की पटक से कँपा दिया—"एहो, अन्यायी पंचनाम देवो ! आँख-रहते अन्धे, वचन-रहते अन्यायी क्यों बनते हो ? भिक्षा की चुटकी कितनी, दान की मुट्ठी कितनी ? एहो, स्वामिनो ! इस काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ में, यदि हमने माई के नाम का सत पुकारा, दाता के नाम की अलख जगाई भी, तो हमारे दन्त-छिद्रों को ही भरा जा सके, इतना अन्न उपलब्ध नहीं होगा।···जिस घर जायेंगे, झोली फैलायेंगे, हाथ पसारेंगे—घर की सास छोटी मुट्ठीवाली बहू को भिक्षा देने भेजेगी। और, छोटी मुट्ठीवाली बहू का हृदय भी छोटा होगा, कि हमारे पर्वतिया-गात देखेगी, तो मुट्ठी का अन्न देली (देहली) पर बिखेरकर, सास के पास भागेगी।··· और यों, मुट्ठी का अन्न' न फकीर की झोली में, न संन्यासिनी की चोली में' वाली कहावत सामने आयेगी।···सो, हे पंचनाम देवो ! अन्यायी वैन न बोलो, वाँके सैन न करो, कि हमें जन्म दिया है, पालन भी करो। नहीं तो आज पंचाचूली में हम तुम अन्यायी पंचनाम देवों की गुरुस्थली के स्थान पर गुरु के नाम की भभूत भी नहीं रहने देंगे।···सो अब अपना कल्याण चाहते हो, तो जैसे जनम दिया है, ऐसे ही पालन भी करो, कि या हमको आठ मन का भोजन, चार मन का कलेवा दो, कि या हमको टक्कर का पहलवान बताओ, कि जिससे लड़कर, या तो हम अपने पेट-पर्वतों को अन्न-भण्डार माँगेंगे, कि या अपने इन पर्वतिया-गातों से मुक्ति पाएँगे।"

पंचनाम देवों के लिए खुली को बाँधना, बिखरी को सँभालना कठिन हो गया।···

एक पलक उठाने, एक पलक गिराने लगे, कि अब क्या करें ? कौन

2

डोटियाली रानी रुपाली

एहो, कथा के भँवरो,

कथा की इस पावन-वेला रमौलिया लोक-वाद्य 'हुड़क' पर हाथ मारता है, कि गढ़ी चम्पावत नगरी में—

खड्गधारी, छत्रधारी राजा कालीचन्द जिस दिन रानी डोटियाली[1] की डोली लाए—काला कौवा वाँया उड़ गया, कि काना ब्राह्मण सामने आ गया।

*　　　*　　　*

---

1. डोटी-प्रदेश की उद्दाम-यौवना राजकन्या। डोटी प्रदेश अलमोड़ा-नेपाल का सीमावर्ती देश है। यहाँ चन्दवंशी राजा पहले राज्य करते थे। आज भी डोटी में चन्दों के वंशज प्रचुर संख्या में हैं।

रानी डोटियाली को नौलाख की तल्ली-मल्ली डोटी[1] घोड़ी धाप, एड़ी चाप लगाकर, राजा कालीचन्द अपने बाँए बैठने वाली बनाके लाए थे, कि गढ़ी चम्पावत में कालीचन्द का और कालीचन्द के मनो राज्य में रुपाली रानी डोटियाली का राज्य होगा।

बात सच थी।

छत्रधारी, खड्गधारी राजा कालीचन्द, कि उसकी सात और रानियाँ जो थीं, सैन से उठने-बैठने, आने-जाने वाली थीं, कि उनके लिए या आकाश में इन्द्र का वज्र ही कड़कता था, या महलों में राजा कालीचन्द का कण्ठ ही।

पर, रानी रुपाली डोटियाली के सामने तो, एक-दो ही दिन में, राजा कालीचन्द फूल का भँवर, सिर का चँवर हो गया था, कि रानी डोटियाली के न बुलाए ही पास आए और लाख लगाए से, परे न जाए।

एहो, रानी रुपाली के रसीले-बैन, कटीले-सैनों का क्या कहना, कि नौलाख सिरों का स्वामी, दो छोटे-छोटे चरणों का दास बन गया। जिसकी म्यान-धरी तलवार देखकर ही, दुश्मन अपने सिरको अपनी गर्दन पर नहीं पाते थे, वह खड्गधारी, धनुर्धारी राजा कालीचन्द—पलक उठाए से उठने, पलक गिराए से बैठने लगा।

रुपाली रानी डोटियाली को गढ़ी चम्पावत में आए, आज पहली रात्रि थी।

संध्या को डोला पहुँचा था। तब आच्छादन-अवगुण्ठन से रानी रुपाली बादल-छिपी हो रही थी, कि चाँद पूनम का या द्वितीया का—कौन जाने, कौन अनुमाने ?

राजा कालीचन्द सुई की डोर, हल की होर (रेखा)—जैसे रानी रुपाली की पीठ को छाँह, सिर को चँवर बने महल के अन्दर जो आए, मध्यरात्रि हो चली, अन्दर ही रह गए।

---

1. डोटी-प्रदेश।

एक झलक और, यह ललक थी—जब से, कि एक झलक रानी रुपाली को डोटीगढ़ी के राजमहल में देखी थी।

डोटीगढ़ी की रानी माँ ने, रुपाली रानी को डोली में बिठाते हुए, राजा कालीचन्द से कहा था—"आज तक हमारी डोटीगढ़ी में दो सूर्य तपते थे, कल से तुम्हारी गढ़ी चम्पावत नगरी में तपेंगे।"

और यों, पांच घंटे की अनवरत प्रतीक्षा करके भी, राजा कालीचन्द रुपाली रानी का घूंघट नहीं उठा पा रहे थे।

राजा कालीचन्द ने अपनी पहली सात रानियों के लिए सतमंजिला महल बना रखा था, जिसके एक-एक खण्ड में, एक-एक रानी रहती थी।

रानियों के नाम पर सात थीं, पर वंशधर एक न था, कि पत्थर टूटके दो नहीं हुए थे। कोखें पूतवंती, छातियाँ दूधवन्ती न थीं किसी की।

सो, आठवीं रानी अब रुपाली रानी डोटियाली थी, जिसके लिए सिर्फ एक मंजिल का महल बनाया था, राजा कालीचन्द ने, कि एक मंजिल की एक बिसी (बीस), यों सात मंजिलों की सात बिसी सीढ़ियाँ होंगी। जिसका एक पल का बिसरना बुरा, एक हलक[1] का नयन-परे जाना दुसह, कैसे उससे सात मंजिलों, सात बीसी सीढ़ियों का व्यवधान सहा-देखा जाएगा ?

* * *

उधर और रानियाँ तो सौतिया-दर्प से दोहरी हो पड़ रहीं, कि अब हमारा होने वाला कौन ? सेज का सोने वाला कौन, कि आज राजा कुमति का कालीचन्द पराए कण्ठ का मंगल-सूत्र, पराई माँग का सिन्दूर बन गया।

पर बड़ी रानी भद्रादेवी न रह सकीं। वे नए महल में गईं।

1. पत्ते के हवा-हिलोरे हिलने में जो अवधि लगती है।

"महाराज !" उन्होंने हाथ पहले जोड़ लिए, पुकार बाद में लगाई।

न सुनी महाराज ने, कि श्रवण कहीं और, नयन कहीं और। महारानी भद्रा ने पुनः, अपेक्षया तीव्र स्वर में, पुकारा—"महाराज !"

राजा कालीचन्द ने आवाज सुनी, पर महारानी की ओर मुड़े बिना ही बोले—"तुम जाओ।"

राजा के स्वर में एक मूर्च्छना-सी थी। एक रिक्तता थी, कि स्वर का शाश्वत पौरुष आज लोप हो चला था।

महारानी ढिग चली आईं।

खनकते काँस्य-पात्र, छमकते स्वर्ण-नूपुरों सी मधुर-मुखर वाणी उनकी; बहते कूल[1], खिलते फूल-सा मन उनका, कि किलक हँसीं, विहँस बोलीं—"इतनी प्रतीक्षा आपने कभी शत्रु का सिर उठा लेने में भी नहीं की, महाराज, कि मन-भरके खड्ग को चलाने वाले के लिए, आज एक झीना अवगुण्ठन उठाना भार बन गया ?······बहन रुपाली तो जैसे हिमालय छिपा लाई है, अपने अवगुण्ठन में !······

और महारानी ने स्वयं रुपाली रानी डोटियाली का घूंघट उलट देना चाहा। पर, रानी रुपाली पाँच हाथ, दश अंगुल परे सरक गई—"दुश्मन के सिर और रानी रुपाली के अवगुण्ठन में बहुत अन्तर होता है, जो भी हो तुम ! रानी रुपाली के रूप के आगे तलवार की धार, धार नहीं रहती। सुन लो, कि एक बार हिमालय हाथों में लेकर स्थिर रह जाना सम्भव है, लेकिन प्रथम बार ही रानी रुपाली की रूपराशि झेल लेने वाली आँखें विधाता ने नहीं बनाई, जो हो तुम !"

रानी रुपाली नहीं बोल रही थी, जैसे फूल-पाँखुरियों में पैठे भँवरे गुनगुना रहे थे, कि जैसे निपुण नर्तकी के अध-बँधे नूपुर रुनझुना रहे थे।

---

1. पानी की नहर को कुमाउँनी में 'कूल' कहते हैं। यहाँ इसका अर्थ 'किनारा' नहीं लिया जाता।

महारानी भद्रा महाराज को देखती रह गईं, महाराज न-उठे अव-गुण्ठन को।

जैसे बहुत दूर कोई किशोरी ग्वालन, अधर-पार्श्व में हाथ-हथेली आड़ी लगाए, मीठी-मीठी हाँक लगा रही हो—रानी रुपाली डोटियाली बोली—"सुन लो, जो भी हो तुम······"

"जो भी नहीं, रानी बहन !" महारानी भद्रा हँस पड़ीं—"तुम्हारी रानी दीदी हूँ मैं।"

"मेरे माता-पिता ने अपने समस्त सौन्दर्य-सौष्ठव से एक मेरी रचना की। न मेरी कोई 'रानी दी' और न मेरा कोई 'राजा भाई !' एक आकाश में दो सूर्य नहीं उगा करते।····"—रानी रुपाली गर्वित स्वर में बोली।

"हाँ, एक आकाश में एक ही सूर्य, रानी बहन !"—महारानी की वाणी का शहद न छूटा—"किन्तु, दूसरा एक चन्द्रमा भी तो उसी आकाश में उगता है ?"

अजानी मूर्च्छना से श्रान्त-अबोल, राजा कालीचन्द सोचने लगे—महारानी भद्रा ने यों रानी रुपाली की ओर अपनी परिभाषा तो नहीं कर दी है ? उन्होंने आदर और प्रेम-पूर्वक महारानी भद्रा की ओर देखा।

महारानी भद्रा पुनः रानी रुपाली के पास चली गई थीं और स्नेह-पूर्वक, बिना अवगुण्ठन उठाने का प्रयास किए ही, सिर पर हाथ फेरना चाहती थीं, कि रानी रुपाली फिर परे सरक कर, बोली—"जो भी हो तुम······"

"मैं इस गढ़ी चम्पावत नगरी की महारानी हूँ, रुपाली !" महारानी शेरनी-सी दहाड़ उठीं, इस बार। पर दूसरे ही क्षण न-जाने क्यों, उनकी उग्र ललाट-रेखाएँ लोप हो गईं। बोलीं प्यार से—"मैं सिर्फ तुम्हारी रानी दीदी···रानी दीदी भी न सही, सिर्फ दीदी हूँ।"

"जो भी हो तुम···" रानी रुपाली कटु स्वर में बोली—"कम से कम, गढ़ी चम्पावत की महारानी अपने को समझने का व्यर्थ दम्भ न

करना ! किसी भी राजा की सिर्फ एक महारानी होती है, और जिस राजा की महारानी कोई और हो···रुपाली उस राजा की कोई नहीं हो सकती !"

स्वर की कटुता से, एक बार तो महाराज भी तिलमिला उठे—"बहुत दम्भ ठीक नहीं, रुपाली रानी ! महारानी भद्रादेवी इस राज्य की सर्वमान्य महारानी हैं, और रहेंगी। उनके मान-स्थान का अपहरण कोई नहीं कर सकता। मैं तुम्हें केवल वंश-रक्षा के विचार से व्याहने गया था। और यह भी सच है, कि तुम्हारे रूप-यौवन की एक अ-पूरी झलक ने ही मुझे संज्ञा-शून्य कर दिया है, पर इस रूप-सागर के मन्थन से चौदह रत्नों की जगह, एक कुरत्न कालकूट ही निकलेगा—यह मैंने नहीं सोचा था।···" और राजा कालीचन्द वेग से उठकर, महारानी भद्रा का हाथ पकड़, बोले—"चलो, महारानी !"

महाराज द्वार तक पहुँचे ही थे, कि पीठ-पीछे से पुनः प्रगल्भ-स्वर सुनाई पड़ा—"कालकूट का वरण करने के लिए, महाकाल की-सी सामर्थ्य भी चाहिए, इतना और भी जान लीजिए आज, महाराज !"

राजा कालीचन्द पलटे—और पलटे ही रह गए। उनकी समस्त इन्द्रियाँ थरथराकर निश्चेष्ट-सी हो गईं, कि जैसे कोई वीणा किसी बालक द्वारा छेड़ी जाते ही, उठा ली गई हो !

* * *

उन्होंने, माथे पर सूर्य-किरणों का स्पर्श पाकर, आँखें उघाड़ीं। रात कब की बीत चली, भोर थी अब। और राजा कालीचन्द के माथे पर सूर्य-किरनें भी थीं और डोटीगढ़ी के दूसरे सूर्य, रानी रुपाली, की पारदर्शिनी-अंगुलियाँ भी थीं। राजा कालीचन्द ने पुनः नयन मूँद लिए, जैसे निद्रालु किन्तु भूखा शिशु, एक बार आँखें खोल, माँ का स्तन पाते ही पुनः आँखें बन्द कर लेता है।

—रात को, पीछे से पुकारते समय, रानी रुपाली के मुँह पर अवगुण्ठन नहीं था।···

3

नयन-झील के मोती
और
सातवें-समुन्दर की सीपियाँ

लली दूध केला,

महर गाँव में जन्मी और बाईस भाई बफौल अपनी बीरगढ़ी में।

ग्रहों का योग, समय का संयोग क्या, कि बीरगढ़ी बफौलगढ़ी में, बफौलों की माताश्री को स्वप्न साँचा विधाता बाँच गए—"सुन हो, बफौल माता, कहे का बैर न मानना, बाईस बेटे बफौल तेरे, कि एक सूरज आकाश में, बाईस तेरी बफौलीकोट[1] में तपते हैं। एक वज्र राजा इन्द्र के इन्द्रलोक में, कि बाईस वज्र तेरी बफौलीकोट में। एक वज्रतन हनुमान से पूतवन्ती रानी अंजनी हो गई, कि बाईस वज्रतन बफौलों की

---

1. गढ़ी और कोट दोनों एक अर्थ में प्रयुक्त हैं।

दूधवंती महतारी तू है, कि बाईस बारियों की किलकारी, बाईस मुंहों की चटकारी तूने सुनी है। विचार करना, ध्यान में धरना। मंजिल भूलना, राह भटकना नहीं, कि कही बात सात गाँठ बाँधना, एक गाँठ खोलना।···एक तेरी बफौलीकोट में क्या, सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ में बाईस बफौलों की जोड़ का नहीं कोई, होड़ का नहीं कोई। और सुना हो, बफौलमाता···कि ऐसे ही, जो तेरे सूर्य-जैसे तपने, वज्र-जैसे कड़कने वाले बाईस बफौलों का वंश-सूत्र आगे बढ़ा सकें, ऐसी बाईस छोड़, दो कन्याएं भी नहीं।"

"मेरे बफौल निर्वंश न हो जाएँगे, प्रभो ?" बफौलमाता बोलीं—"मांस की लोथ थे, दूध सींचे, पालने झुलाए। जब पालना झूले, तड़ी तेल[1] लगाकर, घुनघुनिया[2] खेल लगाए, कि इनकी भूख से भूखी, इनकी प्यास से प्यासी रही। इनकी आँखों से सावन-भादों का भार लिया, अपनी आँखों से असीम प्यार दिया, कि लाड़ले मेरे जब धनुष को चढ़ाने, तलवार को चलाने वाले बनेंगे, तब बाईस बहुओं की रसोई चखूंगी, बाईस बहुओं की सेवा स्वीकार करूँगी, कि बाईस पोतों का मुंह देखूंगी, भरपूर परिवार, अक्षय भण्डार के सामने पलक झपकाऊँगी कि मैं तरूँगी, पितर तरेंगे।···मेरे नौलाख प्रणाम लो, प्रभो, कि अन्यायी वचन वापस लों, अशकुनिया वाणी मौन करो।···मेरी सात जन्मों की सेवा स्वीकार करो, स्वामी, कि जैसे गैया को ग्रास, पितरों को पिण्ड मिले, वह उपाय बताओ।"

"सुन हो, बफौल माता !" विधाता वरदानी वचन बोले—"तेरी कुलनिष्ठा, पितर-सेवा से बाँया लेख मिटाता हूँ, बाँए वचन वापस लेता हूँ। सुन, तेरे बफौल-वंश की जड़ दूब-सी अक्षय रहेगी, कि अपने बाईस बेटे बफौलों के संयोग की कन्याओं के सु-नाम ध्यान में धर लेना।···

1. पाँओं में तेल-मालिश।
2. घुटनों से चलकर खेल करने की अवस्था।

एक लली दूधकेला महरगाँव के टुन महर की सौभाग्यवंती, शौर्यवंती कन्या, दूसरी…"

ए हो, भुरमैली-कुरमैली बिल्ली के दूध-कटोरे में छेद पड़ जाए, कि गात गुरसुरा गई, सपन तोड़ गई, कि विधाता के बोल विधाता की वाणी में ही रह गए।…

*   *   *

आँखें क्या उघड़ीं, बफौलमाता की, मन-मन के मोती बिखर गए, कि सात छोर, सात मोड़ का आँचल भीग गया।

बफौलमाता सोचने लगीं, एक लली दूधकेला और बाईस मेरे बफौल बेटे !…कौन पथ देखूं, किस दिशा चलूं ! एक फूल होता, बाईस पंखुड़ियाँ बीनती। एक फल होता, बाईस टुकड़े कर बाँटती। एक तागा होता, बाईस गांठ बाँधती, कि एक नदी होती, तो बाईस धार बहाती।…

पर, एक लली दूधकेला, कि कन्या को हाथ छुए, वचन कहे से पाप भारी।…और जो एक बेटे की बहू बनाऊँ, तो इकाईस बेटे निर्वंश होते हैं, कि उनकी गैया को ग्रास, उनको पिण्ड नहीं मिलेगा।…

बफौल-माता सोचती रह गई, कि एक परिधान होता, बाईस रंग रंगा लेती। एक लटी होती, बाईस फुन्ने लगा लेती, पर एक माथे पर बाईस सिंदूर-रेखाएँ कैसे काढ़ूं, कि एक गात के बाईस टुकड़े करने का पातक सिर पड़ेगा।…

"माँ !"

बाईस कंठों के एक स्वर से, बफौल माता की तन्द्रा टूटी। बाईस हाथ धुरड़, बाईस हाथ काँकड़[1] लिए, एक काली कुमाऊँ के बाईस शेर मृगया से घर लौट आए थे।

---

1. पहाड़ी मृग।

"माँ, हमारे दूध-कटोरे कहाँ हैं ?"

अब बफौलमाता को ध्यान आया, कि दूध-कटोरे भरने के नाम पर, आज गायें दुही भी नहीं गई हैं। सकारे ही मृगया को चले जाने वाले, अपने लाड़लों के लिए, वो सदा दूध-कटोरे भरे प्रतीक्षाकुल रहती थीं, पर आज स्वप्न-खोई धूप माथे चढ़ा लाई थीं, पर बछिया नहीं खोली थी, थन हाथ न लगाया था। बाईस बेटों के नाम पर, उन्होंने बाईस गायें पाली थीं। सेविकाएँ थीं, पर दूध न दुहने देती थीं, कि दूध-पूत माँ के हाथ में ही रहने चाहिए।···

"आज तुम उदास लगती हो, माँ ?"—बफौलबंधु पास आ गए—"बताओ, माँ, क्यों आज तुम्हारा मुँह उदास हो गया है ? किस वन का काँटा, किस पर्वत का कंकर लग गया है, कि उस वन में डाल की चिड़िया, पात का फल नहीं रहने देंगे, कि उस पर्वत को तोड़कर, रामगंगा में बहा देंगे।"

बफौलमाँ बोलीं—"न किसी वन का लगा काँटा है, न किसी पर्वत का कंकर ही, मेरे लाल ! मन का शूल ही मन को धूल बना रहा है। खैर, छोड़ो यह बात। तुम भूख से उतावले हो रहे हो।"

एक क्षण ललाट-रेखाओं को विद्युल्लताओं-सी कौंधाकर, बफौलमाँ स्नेह-भरे स्वर में, बोलीं—"पर, मेरे लाल !···अंगुलियाँ दुखती थीं, कि ज्वर से कलाइयाँ मुरकती थीं, कि इकाईस छोड़, एक गैया दुह पाई हूँ, सो सिर्फ एक कटोरा दूध-भरा है। पीने वाले बाईस भाई तुम, कि तुम बाईसों के अदिन मुझे लग जाएँ और मेरी एक उमर तुम बाईसों को लग जाए—दूध कटोरा एक, किसे दूँ, किसे न दूँ ?"

बफौलबंधु बोले—"माँ, जैसे एक कोख से हम सबको जन्म, एक आँचल से हम सबको दूध दिया है, वैसे ही इस दूध-कटोरे की भी बाईस धार कर दो।"

बफौलमाँ की आँखों में एक चमक आई, एक गई। बोलीं—"मेरे लाल, इस जनम में तुम बाईसों से आँख उजियाली, गोद हरियाली है।

अगले वाईस जनमों में तुममें से एक-एक पुत्र भी मिल जाए, तो विधाता को नौ लाख प्रणाम दूंगी।···दूध-कटोरा तो वाईस वार बाँट देती, मेरे पूत ! पर, ज्वर के मारे, न गैया दुह पाई हूँ, न कटोरे धो-माँज पाई हूँ। कटोरा भी एक ही है, मँजा-धुला। वाईस कुँवर तुम दूध पीने वाले हो। कैसे पियोगे ?"

वफौल बंधु बोले—"माँ, एक रक्त, एक दूध से हमारी रचना हुई है। एक-एक कर, हम वाईसों भाई, एक ही कटोरे से दूध पियेंगे। माँ, कुन्ती माँ की कथा तुम सुनाया करती थीं न, कि उनके पाँचों पांडवों ने अपनी माँ की बाँटी हुई एक द्रौपदी को स्वीकार कर लिया था, तुम दूध-कटोरे को संकोच कर रही हो ?"

"तो, बेटो !···"वफौल माँ ने आँचल अपने मुँह पर डाल लिया—"मैं कुन्ती रानी से भी सत्रह चरण आगे वढ़ती हूँ, कि महर गाँव में दुन महर की एक कन्या दूधकेला लली है, उसे तुम वाईसों भाई पत्नी-रूप में स्वीकार करो।"

* * *

और यों,

लली दूधकेला का डोला, कल संध्या, वफौलों की वफौलीकोट में पहुँचा था, कि वह वाईस बेटों से आँख की उजियाली, गोद की हरियाली वाली, हिमशिखर-सी महाश्वेता वफौलमाता की एक बहू, वाईस सेजों की एक सोने वाली और वाईस गायों की एक दुहनेवाली, वाईस चूल्हों की एक पकाने वाली थी अब।

गए कल की भोर, विदा की वेला, लली दूधकेला से उसकी माँ सरस्वती देवी वोली थी—"बेटी, आज तक तू लली दूधकेला थी, कल से वफौली कोट में रानी दूधकेला कहलाएगी। लेकिन, मेरी लाड़ली, बिना मुकुट के राजवंशी वफौलों की पत्नी वनके, तू जी कैसे सकेगी, कि वफौलों की चाल से पर्वत हिलते, दहाड़ से शेरनी के गर्भ गिरते हैं। तेरे पिता

महर जी भी सात पैगों के एक पैग[1] कहलाते हैं, पर वफौलों के आगे उनको भी दिशा-विदिशा दिखाई देने लगता है।···न व्याहते तुझे, कि वाईस कसाइयों के कटघरे की एक गाय न वनाते, पर इधर 'ना' कहते, कि वफौल हमारे महर-वंश का नौंमेट[2] ही कर डालते !···पर, भला, तू कैसे जी सकेगी वफौलीकोट के अत्याचारी वफौलों की वाँहों का वाजूवन्द, आँखों का काजल वनके, कि एक फूल के दो भँवरे भी फूल की पंखुड़ियाँ बिखेर देते हैं, तू तो बाईस वानरों को एक फल वनके जा रही है ?"

आज की रानी, कल की लली दूधकेला क्या वोली—"माँ हो, न हिया हार मान हो, न जिया उदास कर, कि मैं वफौली कोट में वाईस महलों की एक रानी, वाईस कुटुम्बों की एक स्वामिनी वनूँगी। गाय का कसाई कोई और, फूलों का वानर कोई और होगा, कि मेरे स्वामी वफौल शरीर-वल से हिमाल[3], किन्तु स्वभाव से पराल[4] हैं, कि एक पर्वत की वाईस चोटियाँ, एक वृक्ष की वाईस डालियाँ हैं। शेर को गरज मारेंगे, पर चींटी को गुड़, चड़ी[5] को चुग्गा डालेंगे, कि न मेरा जी दुखाएँगे, न ऊँचा वोल सुनाएँगे, कि मैं अपनी वफौलीकोट में घी का भोग, सुख की पलक लगाऊँगी, कि मुझे दिन-रातों का आना-जाना मालूम न पड़ेगा।"

और भाभी कलावती क्या वोली—"सुनो हो, ननदिया लली दूधकेला ! वाईस मक्खियाँ जिस पर वैठ जाएँ, वह गुड़ की भेली साबित नहीं बचती। वाईस बिल्लियों को एक दूध-कटोरा वन कर, तुम कैसे दिन काटोगी, वफौलीकोट में ?" और वैरन कलावती, कि उसका बालपन का सेंतुवा[6] मर जाए, जवानी का सहारा न रहे, कि बुढ़ापे की लाठी टूट जाए, सौ वल खा गई, कि उसकी कमर को कमर-तोड़[7] हो जाए।

पर, लली दूधकेला, कि पूनम की चाँद, अमावस की वाती—काँजी

---

1. पहलवान। 2. वंश-नाश। नाम मिटा देना। 3. पुआल। 4. चिड़िया। 5. अभिभावक। 6. संरक्षक। 7. कमर का

अगले बाईस जनमों में तुममें से एक-एक पुत्र भी मिल जाए, तो विधाता को नौ लाख प्रणाम दूंगी।···दूध-कटोरा तो बाईस बार बाँट देती, मेरे पूत ! पर, ज्वर के मारे, न गैया दुह पाई हूँ, न कटोरे धो-माँज पाई हूँ। कटोरा भी एक ही है, मँजा-धुला। बाईस कुँवर तुम दूध पीने वाले हो। कैसे पियोगे ?"

बफौल बंधु बोले—"माँ, एक रक्त, एक दूध से हमारी रचना हुई है। एक-एक कर, हम बाईसों भाई, एक ही कटोरे से दूध पियेंगे। माँ, कुन्ती माँ की कथा तुम सुनाया करती थीं न, कि उनके पाँचों पांडवों ने अपनी माँ की बाँटी हुई एक द्रौपदी को स्वीकार कर लिया था, तुम दूध-कटोरे को संकोच कर रही हो ?"

"तो, बेटो !···"बफौल माँ ने आँचल अपने मुँह पर डाल लिया—"मैं कुन्ती रानी से भी सत्रह चरण आगे बढ़ती हूँ, कि महर गाँव में दुन महर की एक कन्या दूधकेला लली है, उसे तुम बाईसों भाई पत्नी-रूप में स्वीकार करो।"

* * *

और यों,

लली दूधकेला का डोला, कल संध्या, बफौलों की बफौलीकोट में पहुँचा था, कि वह बाईस बेटों से आँख की उजियाली, गोद की हरियाली वाली, हिमशिखर-सी महाश्वेता बफौलमाता की एक बहू, बाईस सेजों की एक सोने वाली और बाईस गायों की एक दुहनेवाली, बाईस चूल्हों की एक पकाने वाली थी अब।

गए कल की भोर, विदा की वेला, लली दूधकेला से उसकी माँ सरस्वती देवी बोली थी—"बेटी, आज तक तू लली दूधकेला थी, कल से बफौली कोट में रानी दूधकेला कहलाएगी। लेकिन, मेरी लाड़ली, बिना मुकुट के राजवंशी बफौलों की पत्नी बनके, तू जी कैसे सकेगी, कि बफौलों की चाल से पर्वत हिलते, दहाड़ से शेरनी के गर्भ गिरते हैं। तेरे पिता

महर जी भी सात पैगों के एक पैग[1] कहलाते हैं, पर वफौलों के आगे उनको भी दिशा-विदिशा दिखाई देने लगता है।...न व्याहते तुझे, कि बाईस कसाइयों के कटघरे की एक गाय न बनाते, पर इधर 'ना' कहते, कि वफौल हमारे महर-वंश का नौमेट[2] ही कर डालते !...पर, भला, तू कैसे जी सकेगी वफौलीकोट के अत्याचारी वफौलों की बाँहों का बाजूबन्द, आँखों का काजल बनके, कि एक फूल के दो भँवरे भी फूल की पंखुड़ियाँ बिखेर देते हैं, तू तो बाईस वानरों को एक फल बनके जा रही है ?"

आज की रानी, कल की लली दूधकेला क्या बोली—"माँ हो, न हिया हार मान हो, न जिया उदास कर, कि मैं वफौली कोट में बाईस महलों की एक रानी, बाईस कुटुम्बों की एक स्वामिनी बनूंगी। गाय का कसाई कोई और, फूलों का वानर कोई और होगा, कि मेरे स्वामी वफौल शरीर-बल से हिमाल[3], किन्तु स्वभाव से पराल[4] हैं, कि एक पर्वत की बाईस चोटियाँ, एक वृक्ष की बाईस डालियाँ हैं। शेर को गरज मारेंगे, पर चींटी को गुड़, चड़ी[5] को चुग्गा डालेंगे, कि न मेरा जी दुखाएँगे, न ऊँचा बोल सुनाएँगे, कि मैं अपनी वफौलीकोट में घी का भोग, सुख की पलक लगाऊँगी, कि मुझे दिन-रातों का आना-जाना मालूम न पड़ेगा।"

और भाभी कलावती क्या बोली—"सुनो हो, ननदिया लली दूधकेला ! बाईस मक्खियाँ जिस पर बैठ जाएँ, वह गुड़ की भेली साबित नहीं बचती। बाईस बिल्लियों को एक दूध-कटोरा बन कर, तुम कैसे दिन काटोगी, वफौलीकोट में ?" और बैरन कलावती, कि उसका बालपन का सैंतुवा[6] मर जाए, जवानी का सहारा न रहे, कि बुढ़ापे की लाठी टूट जाए, सौ बल खा गई, कि उसकी कमर को कमर-तोड़[7] हो जाए।

पर, लली दूधकेला, कि पूनम की चाँद, अमावस की बाती—काँजी

---

1. पहलवान। 2. वंश-नाश। नाम मिटा देना। 3. पुआल। 4. चिड़िया। 5. अभिभावक। 6. संरक्षक। 7. कमर का रोग।

पड़ गई, दूध न फटा।

शहद-घोल बोल बया बोली—"भौजी मेरी कलावती हो, एक सिर में हजार बाल होते हैं, कि सिर फट नहीं जाता। एक वन में हजार वृक्ष होते हैं कि धरती धँस नहीं जाती, कि एक वृक्ष में हजार फल होते हैं, वृक्ष टूट नहीं जाता है।...एक शरीर में दो हाथ, दो पाँव और उनमें बीस अँगुलियाँ—मगर एक प्राण देह-भार से साँस-हीन नहीं हो जाता।...एक रथ के सारथी द्वारिका नरेश थे, कि बाईस रथों की हाँक मैं लगाऊँगी।"

और कलावती का मुँह काला, तन ढीला पड़ गया था।

ऐसी वचन से मीठी, ज्ञान से सरस्वती और भाग से लक्ष्मी बहूरानी दूधकेला को पाकर बफौलमाता, बिन बाईस रसोइयों को चखे ही, कंठ-कंठ अघा, चरण-चरण इठला रही थीं।

* * *

वीर-पर्व निकट आ रहा था।

बफौलबंधु बोले—"माँ, बहुत दिन हो गए, चम्पावत नगरी नहीं गए। आज्ञा दो, कि चार दिन गढ़ी चम्पावत नगरी में राजा कालीचन्द की सेवा में हाजर-नाजर हो आएँ। वीर-पाली निकट आ रही है। राजा कालीचन्द की न पाती आई, न खबर मिली। कहीं गढ़ी चम्पावत नगरी दुश्मनों की आँख-किरकिरी, पाँव-शूल न हो गई हो। अन्यथा राजा कालीचन्द पाती पठाते, दूत भेजते, कि मेरी बावन पंक्तियों की सभा तुम्हारे बिना सूनी पड़ी है। सो हम अब गढ़ी चम्पावत नगरी जाएंगे।

वीरमाता बोली—"लाल मेरे, राज-सेवा में जाने की बात कहते हो, बाट नहीं रोकूंगी। पर, कल बहू मेरे घर आई है। चार दिन उसका पकाया खा जाते, कि मैं भी देख लेती, मेरी बहू देखें, रोटियाँ कैसी बनाती है? गैया कैसे दुहती, दूध-कटोरे कैसे भरती है?"

बफौल विहँस बोले—"माँ, वीरपाली समाप्त होते ही, हम पुनः

अपनी वफौलीकोट लौट आएँगे। तब तक तुम अपनी वहू को गैया का दुहना, दूध-कटोरों का भरना और रसोई का पकाना सिखा लेना, कि फिर कहीं यों न कहो, कि मेरी लाड़ली वहू को ऊँचा वोल कह दिया है ?"

माँ से विदा ले, बफौल जाने लगे, कि रानी दूधकेला आड़े आ गई। घूँघट खोल बोली—"स्वामी मेरे, विवश हो गई हूँ, कि घूँघट उठा रही हूँ, मुँह का वोल बोल रही हूँ। मेरे अपराध क्षमा करना, कि आप मेरे माथे के फूल हैं, मैं आपके चरणों की धूल।"

बाईस स्वामियों को एक प्रणाम कर, रानी दूधकेला पुनः बोली—"कल मैंने एक दुःस्वप्न देखा है, कि मेरे आँगन से बाईस धाराएँ गढ़ी चम्पावत की ओर वही हैं, पर न वे लौटकर आई हैं और न उनका उद्गम ही रहा है। बाईस बाल, बाईस दाँत गिरे हैं, कि मेरे हिया बाईस दरारें पड़ गई हैं।···मेरे स्वामी, हाथ जोड़ती हूँ, चरण पकड़ती हूँ, कि आज आप लोग गढ़ी चम्पावत की राज-सेवा में न जाइए।·· बाईस दिनों का अपशकुन है, कि वह मुझको ही लग जाए। आप बाईस दिवस-बाद ही राज-सेवा में जाएँ। वीरपाली को अभी एक महीना बाकी है। बाईस दिवस आप हमारी वफौली कोट की धरती भारी, उदासी हल्की कर जाएँ, कि मैं बाईस लटियों का एक फुन्ना, बाईस फुन्नों की एक लटी बनूँगी, कि बाईस हाथों की एक छड़ी बनूँगी, जो टेकेगा, उसी को आधार दूँगी, बाईस म्यानों की एक तलवार बनूँगी, जिसमें हाथ जाएगा, उसी म्यान में मिलूँगी, कि हे स्वामी, अपने सुदिन देती हूँ और आपके अदिन लेती हूँ—बाईस दिन बाईस गैया दुहूँगी, दूध-कटोरे भरूँगी, कि बाईस अटारियों, बाईस पिटारियों पर घी के दिए जलाऊँगी, कि मालिन बनूँगी, बाईस फूल-मालाएँ गूँथूँगी और मालकिन बनूँगी, बाईस ब्राह्मण, बाईस भिखारियों को अन्न दूँगी, धन दूँगी, कि मेरे स्वामी जुग-जुग जिएँ।"

*   *   *

वफौल रुक गए।

यों सौभाग्यवती दूधकेला ने वाईस गंग-धाराओं में स्नान किया, वाईस धामों की यात्रा की—कि, वाईस सेजों में फूल विछा सोई, कि वाईस दिवस इठलाई फिरी और वाईस रातों की नींद खोई।

वाईस अश्वों की एक वल्गा-सी, रानी दूधकेला जव वाईस शृङ्गार कर चुकी, वाईस कंठमाल पहना, वाईस कंठहार वरण कर चुकी—वफौलों ने फिर विदा की वेला न्योती, कि अव हम गढ़ी चम्पावत नगरी में राज-सेवा को जाएँगे, कि जिस राजा कालीचन्द ने हमें अशेष सम्पत्ति दी है, अटूट मान दिया है, न-जाने क्यों हमें पाती नहीं भेजता, क्यों नहीं दूत पठाता।"

विदा की वात से, पात-अटके ओस-कणों-जैसे आँसू ढुलक आए, कि या मोती सिंधु सुनील में, या रानी दूधकेला की नयन-झील में ही पाए जाते हैं।

नयन भर लाई, हाथ जोड़ लाई—"सुनो हो, मेरे स्वामी! आपके चरण की दासी हूँ, कि ठोकर मार लेना, पर क्षमा कर देना। वाईस दिन मैंने आपकी सेवा की है, और स्वयं भी ऐश्वर्य भोगा है। मगर जिस ईश्वर ने आप-जैसे शौर्यवान स्वामी मुझे दिए, उसकी सेवा में एक वाती जला नहीं पाई, एक पाती[1] चढ़ा नहीं पाई।·· सो, स्वामी, अभी तो वीर-पाली[2] को आठ दिवस वाकी हैं। आप सात दिवस और यहाँ रुक जाइए, मैं सात दिवस का व्रत रखूँगी, स्वामी सत्यनारायण की कथा कराऊँगी, कि मेरा नारी-जीवन सफल हो।···" और यह कहते-

1. पल्लव।

2. वीर-पाली—पहले राजा लोग वर्ष-भर में एक दिवस वीर-पाली नियत करते थे। यह एक अंचल-व्यापी वीरोत्सव होता था, जिसमें स्थानीय ही नहीं, कभी-कभी सीमा-पारवर्ती राज्यों के वीर भी भाग लेने आते थे।

कहते, रानी दूधकेला लाजवंती-सी लजा गई, चम्पाकली-सी पुलक गई—आँचल की ओट मुँह कर, नखों से माटी कुरेदने लगी, कि वफौलों का मन मीठा हो आया, कि लली दूधकेला के बुरूँश-फूल-से मुख की दंत-पाटी सातवें-समुन्दर की सीपियों को मात करती है।

यों वफौल सात दिवस को और रानी दूधकेला के प्यार में ही रह गए, कि आठवें-दिन दिशा खुलते ही प्रस्थान करेंगे। वीर-पाली में भाग लेने, पहुँच ही जाएँगे।



4

सूर्य-सूर्य, चन्द्र-चन्द्र का अन्तर

गढ़ी चम्पावत नगरी में

रुपाली रानी के रसीले-बैन, कटीले-सैन राजा कालीचन्द को बे-भान कर रहे थे, कि साँझ ढल रही है—कब ढल रही है।

सारा राज-कार्य वयोवृद्ध मन्त्री विज्ञानचन्द्र जोशी सँभाल रहे थे। कई बार उनका मन हुआ, राजा को इस सम्मोहन-व्यूह से निकालने का प्रयास तो करें, जिसमें राजा कालीचन्द, गढ़ी चम्पावत का शेर पिंजरे का तोता बना, 'रुपाली, रुपाली !' रटता रह गया है।

राजगद्दी पर राजा-रानी के नाम के पुष्पहार रोज चढ़ते थे, मुरझा जाते थे।···

आज प्रातः विज्ञानचन्द्र महारानी भद्रा के खंड में गए। महारानी भद्रा महाकाल का पूजन कर रही थीं। दीवानजी को देखते ही द्वार-खड़ी परिचारिका कुछ बोलने को हुई, कि दीवानजी ने संकेत से चुप

रहने, परे चले जाने को कहा।

परिचारिका, कनखियों से देखती, अँगुलियों पर इकहरी होती चली गई।

पूजन समाप्त कर, महारानी ने सूर्यमुखी-शंख बजाया, तो दीवानजी शंख-ध्वनि मौन होने तक विस्मय-विमुग्ध सुनते रह गए।

रहा न गया, तो बोल उठे—"रानी बहू, सूर्यमुखी-शंख को इतनी तुमुल-ध्वनि करते हुए तब भी नहीं सुना मैंने, जब स्वर्गीय महाराजा भालचन्द्र इसे बजाते थे, या राजकुमार कालीचन्द्र। सुना था, नारी-द्वारा गुंजाने पर, शंख-ध्वनि लोप हो जाती है·· पर, प्रत्यक्ष में कुछ विपरीत अनुभूति हुई है।"

महारानी भद्रा ने विहँस कर, शंख शंखाधार पर रख दिया। नैवेद्य-पुष्प ले, दीवानजी की ओर बढ़ीं। पहले चरणों पर पुष्प धरा, फिर नैवेद्य दिया।

नत-नयन हो बोलीं—"दीवानका[1], जब स्वर्गीय ससुर जी इस शंख को बजाते थे, तब वो महारानी माँ की स्मृति साथ नहीं रखते थे, जब महाराज इसे बजाते थे, तब उन्होंने हृदय में मुझे कभी न रखा ···मैं बजाती हूँ, तो उनकी-अपनी, दोनों की श्रद्धा-आस्था का प्रतिनिधित्व करती हूँ।"

"तुम तो, द्वारिकेश हरि की एकनिष्ठ पुजारिन थीं, रानी बहू? फिर नारी के द्वारा महाकाल का पूजन तो, वीरगढ़ी चम्पावत नगरी में वैसे भी निषिद्ध है?" अपेक्षया गंभीर-स्वर में दीवान विज्ञानचन्द्रजी बोले—"रानी बहू, एक बात कहूँ। सात दाढ़ों के बीच की एक जीभ, सात काँटों से विंधी एक कली हो तुम। छाया तुम्हारी पीछे, दुश्मन तुम्हारे आगे रहते हैं।·· सो, हर पग आँख-उघाड़े, राह-देखे धरो। महा-काल के तुम्हारे द्वारा पूजन और राज-शंख के तुम्हारे द्वारा गुंजन की

1. दिवान चाचा।

4

सूर्य-सूर्य, चन्द्र-चन्द्र का अन्तर

गढ़ी चम्पावत नगरी में

रुपाली रानी के रसीले-वैन, कटीले-सैन राजा कालीचन्द को बे-भान कर रहे थे, कि साँझ ढल रही है—कब ढल रही है।

सारा राज-कार्य वयोवृद्ध मन्त्री विज्ञानचन्द्र जोशी सँभाल रहे थे। कई बार उनका मन हुआ, राजा को इस सम्मोहन-व्यूह से निकालने का प्रयास तो करें, जिसमें राजा कालीचन्द, गढ़ी चम्पावत का शेर पिंजरे का तोता बना, 'रुपाली, रुपाली !' रटता रह गया है।

राजगद्दी पर राजा-रानी के नाम के पुष्पहार रोज चढ़ते थे, मुरझा जाते थे।···

आज प्रातः विज्ञानचन्द्र महारानी भद्रा के खंड में गए। महारानी भद्रा महाकाल का पूजन कर रही थीं। दीवानजी को देखते ही द्वार-खड़ी परिचारिका कुछ बोलने को हुई, कि दीवानजी ने संकेत से चुप

रहने, परे चले जाने को कहा।

परिचारिका, कनखियों से देखती, अँगुलियों पर इकहरी होती चली गई।

पूजन समाप्त कर, महारानी ने सूर्यमुखी-शंख बजाया, तो दीवानजी शंख-ध्वनि मौन होने तक विस्मय-विमुग्ध सुनते रह गए।

रहा न गया, तो बोल उठे—"रानी बहू, सूर्यमुखी-शंख को इतनी तुमुल-ध्वनि करते हुए तब भी नहीं सुना मैंने, जब स्वर्गीय महाराजा भालचन्द्र इसे बजाते थे, या राजकुमार कालीचन्द्र। सुना था, नारी-द्वारा गुँजाने पर, शंख-ध्वनि लोप हो जाती है... पर, प्रत्यक्ष में कुछ विपरीत अनुभूति हुई है।"

महारानी भद्रा ने विहँस कर, शंख शंखाधार पर रख दिया। नैवेद्य-पुष्प ले, दीवानजी की ओर बढ़ीं। पहले चरणों पर पुष्प धरा, फिर नैवेद्य दिया।

नत-नयन हो बोलीं—"दीवानका[1], जब स्वर्गीय ससुर जी इस शंख को बजाते थे; तब वो महारानी माँ की स्मृति साथ नहीं रखते थे, जब महाराज इसे बजाते थे, तब उन्होंने हृदय में मुझे कभी न रखा ...मैं बजाती हूँ, तो उनकी-अपनी, दोनों की श्रद्धा-आस्था का प्रतिनिधित्व करती हूँ।"

"तुम तो, द्वारिकेश हरि की एकनिष्ठ पुजारिन थीं, रानी बहू? फिर नारी के द्वारा महाकाल का पूजन तो, वीरगढ़ी चम्पावत नगरी में वैसे भी निषिद्ध है?" अपेक्षया गंभीर-स्वर में दीवान विज्ञानचन्द्रजी बोले—"रानी बहू, एक बात कहूँ। सात दाढ़ों के बीच की एक जीभ, सात काँटों से बिंधी एक कली हो तुम। छाया तुम्हारी पीछे, दुश्मन तुम्हारे आगे रहते हैं।... सो, हर पग आँख-उघाड़े, राह-देखे धरो। महा-काल के तुम्हारे द्वारा पूजन और राज-शंख के तुम्हारे द्वारा गुंजन की

1. दिवान चाचा।

बात अन्य रानियों तक नहीं जानी चाहिए। नहीं तो, बात कल प्रजा तक पहुँचेगी। भगवान् न करें, पर यदि कल कोई विपदा गढ़ी चम्पावत नगरी पर पड़ी, तो उसे महाकाल का कोप माना जाएगा और दोष तुम्हारे माथे पड़ेगा, बेटी!"

महारानी भद्रा चिन्ताकुल हो उठीं। बात यथार्थ थी। पर, उनकी अपनी श्रद्धा-निष्ठा कुछ और थी। इस बार नयन उठा बोलीं—"दीवानजी, आप मेरे लिए ससुरश्री के स्थान पर हैं। आपके आदेश की अवमानना, सात धार बहाएगी, सात वन भटकाएगी।···पर, मैं सोचती हूँ—राजवंश की महाकाल पूजन-परम्परा अटूट रही है, अब तक। सुसरश्री थे, तब की बात है। मैं नादान थी। वो महाकाल का पूजन कर रहे थे, मैं जा पहुँची। पिता का सा वात्सल्य, माँ का सा लाड़ मैंने ससुरश्री से पाया था। रुढ़िगत-प्रतिष्ठा न कर पाती थी, कि जा गोद में बैठती, नाक पकड़ती, कान ऐंठती—हजार खेल खेलती थी।" कहते-कहते, महाराज भालचन्द्र की स्नेह-स्मृति से, महारानी की आँखें भर आईं।

"हाँ, रानी बेटी!" दीवानजी का स्वर भी भारी हो आया—"जब तुम इस नगरी में राज-वधू बनकर आईं थीं—केवल सात वर्ष की थीं। गज-भर का पहनना-ओढ़ना, मुट्ठी-कटोरा-भर खाना-पीना था तब तुम्हारा। बड़े महाराज तुम्हें नयन-तारा बनाके रखते थे, कि 'भद्रो मेरी बहू-बेटी है।'···"

"एक दिन, दीवान का," जरा प्रकृतिस्थ हो, महारानी भद्रा बोलीं—"उस दिन की बात, मैं कह रही थी। पूजन समाप्त कर, ससुरश्री शंख बजाने जा रहे थे, कि मैंने क्या नादानी की, नैवेद्य माँगा। ससुरश्री बोले, कि पहले शंख बजा लूँ, तब। मैं हठीली। क्या कन्या-बानी[1] बोली, कि नैवेद्य पहले। ससुरश्री कठोर-स्वर में बोले थे—'जिस दिन महाकाल का शंख बजने से पूर्व ही, नैवेद्य बँटने लग जाएगा, उस दिन

1. नादानी की बात।

महाकाल का शंख ही एक ध्वनि-शून्य घोंघा बन जाएगा, बहू !···और जिस दिन महाकाल के इस सूर्यमुखी-शंख के नाद से यह पूजागृह सूना हो गया···' और ससुरश्री के माथे पर, चिन्ता-रेखाएँ उभर आईं थीं। दीवानका, ससुरश्री के स्नेहाश्रय की ढेरी-सारी बातें, शायद, भूल गई, पर यह स्मृति न बिसर सकी।··· और, जबसे महाराज रानी रुपाली के मादन-मोहन रूप-जाल के मकड़े बन गए हैं, दिशाएँ खुलती हैं, कि मेरी आँखें खुलती हैं और महाकाल-मन्दिर में प्रवेश निषिद्ध होने से, यहाँ महाकाल की मूर्त्ति स्थापित कर, पूजन करती हूँ, शंख-नाद करती हूँ, कि कहीं राजवंश पर राहु-केतु की दृष्टि न पड़ जाए।"···

"तुम साक्षात् कुलदेवी लक्ष्मी हो, रानी बहू !" दीवान विज्ञानचन्द्र बोले—"काश, जाई-चम्पाकली की वेलि अफूली न रहती, अनार-आम के वृक्षों को अफला न रह जाना पड़ता। वैसे, तुम्हारी फल-फूलहीन छाया में भी असीम स्नेह है, सुख है—पर, महाराजकुमार तो रानी रुपाली के विषाक्त रूप-सरोवर के मच्छ बन गए हैं।"

महारानी भद्रा अबोली, माटी निरखती रहीं।

दीवानजी फिर बोले, "आज मैं तुम्हें बुलाने आया हूँ, बेटी !"

"कहाँ के लिए, दिवानका ?" अप्रत्याशित-प्रश्न से महारानी चौंक उठीं।

"राजगद्दी के वैधव्य को अब एक मास पूरा होता है, रानी बहू !" दीवानजी के स्वर में मर्मभेदी तीव्रता थी।

"मैं क्या कर सकती हूँ, दीवानका ? महाराज को मैं मना-मना कर, हार चुकी। पर, उनका रानी रुपाली के रूप-पाश से पल हिलना, तिल हटना नहीं होता। और मैं···मैं यह सोचती हूँ, काश, कि प्रणय की यह अटूट लड़ी गढ़ी चम्पावत की राजवंश-वेलि को पतिया-फुलिया-हरिया जाए, तो बहन रुपाली को मैं आँख का काजल, लटी का फुन्ना मानूँगी।"

"रानी रुपाली तुमसे महाराजकुमार को छीन रही है, तुम्हारे फूल-से जीवन को काँटों से बींध रही है और तुम उसकी गोद हरियाने

औंल हाय[1] कर रही हो । वरदानी वोल वोल रही हो ? रानी
तुम्हें याद न होगा, सूर्यचन्द्र की सातवीं-किरन सी तुम थीं तव, सात
वर्ष लगते ही, अलकापुरी से गढ़ी चम्पावत की राजश्री बनाके मैं ल
था तुम्हें यहाँ । तुम्हारी माँ जी ने तुम्हारे सुख-दुःख का साक्षी रहने
वचन मुझसे लिया था ।...और यहाँ, मेरी आँखों-आगे तुम्हारे कलेजे
छै तीर चलाए गए, कि मुझे वींध गए हैं, सिर पर छै नागिनें वि
गईं, कि उनकी कुंडलियाँ मेरी छाती पर, फुफकारें मेरे मानस में
हैं ।...और अब सातवीं यह, डोटियाली रानी रुपाली विजली बन
तुम्हारे सुख-सौभाग्य पर गिरी है, तो मन करता है, इस विषैली ना
के विष-दंत तुड़वाकर, चींटियों का कलेवा कर दूँ, कि तव मेरे मानस
ताप मिटेगा, शूल निकलेगा । मैं इस कुलक्षणी डोटियाली..."

"दीवान जी !" महारानी भद्रा चीख उठीं—"जरा सँभलकर
कीजिए । यह न भूल जाइए, कि जिस चंद राजवंश के आप आज्ञापा
दीवान-मात्र हैं, रानी रुपाली उसकी भावी सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्न महार
हैं । उनकी अवज्ञा करने, उन्हें हल्के वोल वोलने का आपको
अधिकार नहीं ।"

दीवान जी ठगे-ठगे रह गए । महारानी भद्रा उनका सदैव पितृ
सम्मान करती आई थीं । उनसे अपने प्रति यों रोष-भरे शब्द सुन, दी
जी का मन दुःखी हो गया । रानी रुपाली का यों पक्ष लेना, दीवान
को खटक गया ।

दीवान जी लौट चले ।

"दीवानका..."सात तारों का झनक टूटना हुआ ।

दीवान जी ने देखा, महारानी भद्रा की आँखों में आँसू उमड़ आये
दीवान जी कुछ वोलें, कि महारानी उनके चरणों पर गिर पड़ीं—"
क्षमा कर दीजिए, दीवानका !"

---

1. ईश्वर को प्रणाम ।

दीवानजी ने महारानी को अपने कंठ से लगा लिया—"मुझे पाप न लगाओ, रानी बहू ! तुम इस राजवंश की कुललक्ष्मी हो, तुम्हें लगने वाले पाँव कुष्ठी हो जाएँगे।"

"आपको बुरे वचन बोली, इसका शाप न देना, दीवान का ! मैं सौभाग्यवती, पुण्यवती नहीं रह जाऊँगी।" महारानी भद्रा ने हाथ जोड़ दिए—"आप मेरे लिए पिता-तुल्य हैं, पर महाराज या उनके प्रियजनों के लिए कटु शब्द मैं सुन-सहन नहीं कर पाती···रानी रुपाली मेरे लिए काली नागिन सही, महाराज के लिए वह मंगला-मधुरा है, मैं उसे गले की माल, पीठ की ढाल मानकर चलूंगी···दीवान का, नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी तभी होती है, जब वह वंश-क्षय का कारण न बने। निपूती नारी, पुरुष की अर्द्धांगिनी क्या, चतुर्थांशिनी भी नहीं। ऐसी मैं हूँ।"

क्षण-भर ठहर, दीवानजी को बोलने का अवकाश न दे, महारानी तरल स्वर में बोलीं—"सो, अपनी सात सौतों को मैं अपनी अंशरूपिनी मानती हूँ, कि जिस तरह एक कला की सात पंखुड़ियाँ, एक नदी की सात धाराएँ होती हैं···अन्न मेरे पेट का नहीं बँटता, वस्त्र मेरे शरीर का नहीं बँटता सौतों में। एक चीज बँटती है—महाराज की प्रीति, उन्हीं की प्रतीति। वह बँट जाती है, बदले में मेरे हिस्से का उत्तरदायित्व भी बँट जाता है···तब किसी से शिकायत क्यों हो मुझे ? एक वृक्ष की कई डालियाँ, एक राजा की कई रानियाँ। सो, असन्तोष का कारण क्या ?···और, बहन रुपाली ? वह मेरे सारे सुख-सौभाग्य का अपहरण करके भी, यदि स्वयं फल-फूल जाए—अपने पुण्य उसे दे दूंगी, उसके पाप अपने हिस्से लगा लूँगी, कि वह लता फूल गई, वह डाल भूल गई, तो उस दिन मैं महाराज की अर्द्धांगिनी बन जाऊँगी।"

"तुम धन्य हो, रानी बहू !···और···" दीवानजी के नयनों से स्नेहाश्रु चू आए—"और यह गढ़ी चम्पावत भी धन्य है, और मैं भी धन्य···"

वातावरण स्नेहावेग के कारण, कुछ क्षण अबोला, अमुखर रह

गया।

"राजबहू, राज-सिंहासन की रिक्तता, एक मुझे नहीं, सभी को खल रही है। मैं आज तुम्हें बुलाने आया था, रानी बहू, कि राज-सिंहासन को अब और श्री-हीन न रहने दो, कि किसी देश के चक्रवर्ती सम्राट के अवसान पर भी सिर्फ एक दिन का वैधव्य उसे भोगना पड़ता है—यहाँ तीस सम्राट नहीं, एक महाराजकुमार कालीचन्द हैं। ईश्वर उन्हें शतायु करे।"

दीवानजी के स्वर में तिक्तता-तीव्रता बनकर, उनका राज-स्नेह बसा है, महारानी भद्रा समझती थीं।

शान्त स्वर में बोलीं—"दीवान का, बहन मेरी रुपाली—महारानी रुपाली, वह कहती थी, एक क्षितिज में एक सूर्य उगता है !"

दीवानजी, सहसा, महारानी की बात का मर्म न समझ सके। निर्वाक महारानी का मुख-मण्डल निरखते रहे, कि एक मण्डल आकाश है, एक रानी बहू भद्रा का मुख, कि दोनों ज्योति के आधार हैं।

"और वह महारानी रुपाली···" महारानी भद्रा शिशुत्व की मुसकान अधर-पाटी ला, बोलीं—"वह कहती थी, 'जो भी हो तुम'···मैंने कहा, 'तुम्हारी रानी दीदी हूँ।' मैंने बड़े प्यार से कहा था। वह कड़ककर बोली थी, 'न मेरी कोई रानी दीदी, न मेरा कोई राजा भैया, कि मैं माँ-कोख की एक लली, चम्पा-डाल की एक कली हूँ। मेरा माँ ने एक मुझे जन्म दिया, कि एक क्षितिज दो-दो सूर्यों को जन्म नहीं दे सकता··· और पूछती थी, 'तुम कौन हो, जो भी हो तुम ?'···मेरा भी स्वाभिमान तिलमिला उठा था, कि नगाड़ा सोंटे की चोटों से बजता है, राजवंशी बात की चोट से गरज उठते हैं। 'मैं इस गढ़ी चम्पावत की, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की महारानी हूँ, रुपाली !'···और वह महारानी रुपाली, आँख न लगे उसकी प्रचंडता को, बत्तख-सी कंठिला बोली क्या बचन, कि 'जहाँ कोई और महारानी हो, वहाँ महारानी रुपाली एक म्यान को दूसरी तलवार'···और धार ऐसी कि म्यान चीर डाले !···"

दीवानजी सुनते रहे।

महारानी भद्रा कहती रहीं—"मैं न उस तेजस्विनी का जाना चाहती हूँ, न म्यान का चिरना, कि गले मंगल-सूत्र ले मरुँगी, तो सात स्वर्गों का सुख भोगूंगी। निपूती चल वसूँगी, तो सात नरक सड़ूंगी, कि एक वहन रुपाली के गोद-भरी वनने से मैं इस महापातक से वच जाऊँगी। सो, दीवान का, मैंने उससे कहा, कि हाँ, सचमुच एक क्षितिज में दो सूर्य नहीं उग सकते, एक म्यान में दूसरी तलवार नहीं रह सकती।"

"और तुमने यह नहीं कहा···" दीवानजी तीव्र स्वर में वोले—"एक क्षितिज में एक ही सूर्य सही, दूसरा चन्द्रमा तो उगता है ? एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, पर किसी परिस्थिति-विशेष में एक कमर में दो म्यानें तो रह सकती हैं ?"

"कहा था, दीवान का !··· कहा था !" सहसा महारानी भद्रा ने अपना मुँह फेर लिया—"लेकिन, अव गढ़ी चम्पावत की राजरानी महारानी रुपाली है, रानी भद्रा नहीं।"

"रानी वहू···"

वस, दीवानजी लौट चले, कि सूर्य गढ़ी चम्पावत नगरी का बुरा, आकाश का भला, कि विश्व को ज्योति देता है। चन्द्र आकाश का छोटा, चम्पावत गढ़ी का श्रेष्ठ, कि एक पाख-भर निर्मल ज्योति, शीतल छाया देता है, मगर दूसरे की आँचल की छाया, नयन-नेह की ज्योत्स्ना आठों पहर, वारहों मास गढ़ी चम्पावत के राजवंश का सौभाग्य सुरक्षित रखती है।

यों सूर्य-सूर्य में अन्तर, चन्द्र-चन्द्र में अन्तर होता है, कथा सुनने वालो !

5

बयार की उल्टी दिशा, पनार की बाँकी धार—

उधर चार भाई मल्ल धरती धँसाते, आकाश गुँजाते गढ़ी चम्पावत नगरी की ओर बढ़े। इधर बाईस भाई बफौल भी, अपनी बफौलीकोट से लली दूधकेला के साथ विवाह कर, चम्पावत नगरी पहुँचे। परम्परा के अनुसार, उन्होंने बफौलीकोट से बारह बिसी मनों की 'बफौल-ढुंगी' (प्रस्तर-खंड)—अपनी लुवासार-गुलेल से—गढ़ी चम्पावत के प्रवेश-द्वार के समीप फेंक रखी थी। पर, गढ़ी चम्पावत के राजा कालीचन्द अपनी आठवीं रानी रुपाली की सेज सोये थे, कि उन्हें साँझ-सूर्य के ढलने, भोर-सूर्य के उगने की भी सुधि नहीं थी। सो, नियमानुसार, 'बफौल-ढुंगी' का पूजन नहीं हो पाया था। बफौल-बन्धु जब चम्पावत पहुँचे और उन्होंने अपनी 'बफौल-ढुंगी' को अ-पूजित और उपेक्षित पाया,

तों उन्हें क्रोध हो आया। उन्हें लगा, कि गढ़ी चम्पावत नगरी के अ-दिन आ रहे हैं, जो आज 'वफौल-ढुंगी' उपेक्षा अनादर का पात्र बनी है।

बाईसों भाई, उदास और कुपित मन लिए, सीधे चम्पावत के राजमन्त्री जोशी दीवान के पास पहुँचे। और···

"चरन छूते हैं, प्रणाम करते हैं, दीवानजी !"

दीवानजी मुड़े। देखा, एक वन के बाईस देवदार वृक्षों-जैसे, बाईस भाई वफौल प्रणाम कर रहे हैं।

"आयुष्मान भव !" आशीर्वाद देते हुए, दीवानजी वफौलों की ओर बढ़े—"मैं कब से तुम लोगों की प्रतीक्षा में था, वफौल श्रेष्ठो ! दूत पठाए, लौट आए, कि जब वे चले—प्रस्थान-द्वार से काना प्रवेश करता, मुंडेर-बैठा कौवा कुवाणी बोलता था, कि न बोलनी-बेला सियार बोल गए थे···"

वफौलों को साथ ले, दीवानजी महल से बाहर चले आए। चलते-चलते वफौलों ने दीवानजी को अपने विलम्ब से आने का कारण बताया। वफौलों की कथा सुन, दीवानजी होंठों-होंठों मुसकराए, कि एक कथा पाँच पाण्डवों की सुनी थी, कि एक द्रौपदी लाए थे। एक कथा निराली इन बाईस वफौलों की, कि एक लली दूधकेला बाईस सिरों को एक कलश, बाईस आँचलों में एक नारियल-सी लाए हैं···

वफौल बन्धु, असन्तोष व्यक्त करते हुए, बोले—"दूत पठाए, अपशकुन से लौट आए, यह ठीक, कि अपशकुन की उम्र बड़ी, कि तब से आप आज सन्ध्या दूत पठाते···पर, आज पहली बार गढ़ी चम्पावत नगरी में वफौलों की गुलेल-ढुंगी[1] अपूजी रह गई है···वफौलों का इतना बड़ा अपमान, वफौलों के लिए इतना बड़ा अपशकुन कभी नहीं हुआ, कि

---

1. लोककथा में, वफौलों-द्वारा चम्पावत नगरी में आगमन के समय गुलेल-द्वारा बारह बीसी का (दो-सौ चालीस मन भार का) पत्थर फेंके जाने की बात कथित है। ढुंगी पत्थर को कहते हैं।

प्रस्थान-द्वार पर काने का घुसना और प्रवेश-द्वार पर वफौलों की गुलेल-ढुंगी का अरूजा रह जाना। वफौलों की गुलेल-ढुंगी आज पहली बार—बिना पिठाँ-अक्षत, धूप-दीप-नैवेद्य की—प्रवेश-द्वार पर पड़ी रह गई है !"

जोशी दीवान विज्ञानचन्द्र बोले—"सुनो हो, वीर वफौलो ! बारह बरस नहीं बीते, एक मास बीता है, कि एक मास की यह अवधि कटनी कट गई, बीतनी बीत गई है, पर दशा जैसे और रूठ गई है, परम्परा जैसे और टूट गई है, कि मन का कलपना और बढ़ गया है, हिया का भार और बढ़ गया है। गढ़ी चम्पावत नगरी के वंशचन्द्र[1] के कौन दिन आने हैं न-जाने। भगवान् उन अदिनों को दुश्मन के खेत में गाड़ आए। बयार-पनार, दोनों उलटी बहती लगती हैं मुझे, वीर वफौलो !..."

आकाश के सबसे घने काले बादल की तरह कम गरजने, अधिक बरसने के अभ्यासी दीवान जोशी को, आज प्रथम बार चिंताकुल देख—वफौलों को भी क्लेश हो आया, कि वफौलों की प्यारी गढ़ी चम्पावत नगरी पर राहु-केतु क्या मंगल-स्थान बैठने लगे हैं, कि मन टूटे पानी के घट-पाटों[2]-सा बैठा जाता है।

प्रतिवर्ष वे अपनी वफौलीकोट में जाते थे। वीर-पर्व से पूर्व लौटते थे। आने के दिन वफौल-वंश के अजेय-वीरत्व का प्रतीक गुलेल-प्रस्तर फेंकते थे, कि उस गुलेल-प्रस्तर के दर्शन-पूजन के लिए, बूढ़े लाठी का सहारा, बच्चे माँ की गोद छोड़कर दौड़ते थे, कि गढ़ी चम्पावत नगरी में उचककर देखना, पिचककर चलना पड़ता था।

और वफौलों के स्वागत में बाईस दनदनाटी-नगाड़े, बाईस सूर्यमुखी-शंख, बाईस ऊर्ध्वमुखी-तूर्य बजाए जाते थे, कि बाईस स्वर्ण-अश्व जोते

---

1. चन्द्रवंशी राजाओं।

2. पनचक्की के पाट पानी बन्द कर दिए जाने पर, धीमे-धीमे स्थिर हो जाते हैं।

जाते थे, कि गढ़ी चम्पावत नगरी के नयन-तारे वफौल आज लौटे हैं···

और आज वयार उल्टी दिशा, पनार वाँकी धार वही है, कि वफौलों की अगवानी के नाम पर, राजा कालीचन्द रानी की सेज नहीं छोड़ पाया !···

वीर वफौलों की भृकुटियाँ चढ़ीं देख, जोशी विज्ञानचन्द्र ने बताया, कि किस तरह गढ़ी चम्पावत नगरी का खड्गधारी नरेश कालीचन्द रानी रुपाली के कटाक्षों में कैद पड़ा है, कि हाथ-हथकड़ी नहीं, पाँव-जंजीर नहीं—पर, मन जो सैन-सीखचों में बन्द हो गया है, तो आँख-उघाड़े दिखता, हाथ-पसारे सूझता नहीं है।

"वफौल, मेरे वीरो ! तुम हो, कि गढ़ी चम्पावत नगरी की ओर आँख-अँगुली उठाने को धरती-धरमराज, गगन-देवराज की भी छाती हिल जाती है, कि एक वज्र का स्वामी मैं हूँ, बाईस वज्रों का राजा कालीचन्द !··· वफौल, मेरे बेटो ! जिस दिन काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ से तुम्हारे पाँवों की धमक हट जाएगी, उसी दिन राजा कालीचन्द के माथे से मुकुट भी उठ जाएगा।"

कुछ क्षण रुक, पुनः स्नेह-भरे स्वर में, जोशी विज्ञानचन्द्र बोले—"तिरिया की धार तलवार से तीक्ष्ण, गंगा से तीव्र होती है, मेरे बेटो ! राजा कालीचन्द उसी धार कट गया है, उसी धार बह गया है, कि तुम उस पर कोप न करना। यों वह तुम्हें अपनी राजधानी के बाईस सूर्य मानता है···"

वफौलों को यों समझा-बुझा, दीवान जोशी ने राज-कर्मचारियों को नगरी में सन्देश देने भेजा, कि वफौल-ढुंगी के पूजन का मंगल-आयोजन हो।

6

रूप का प्रचण्ड प्रपात प्यार का थका हिरन-छौना

बफौल वन्धुओं को समझा-बुझा, जोशी दीवान—बफौलों के आगमन और उनके रोष की सूचना राजा कालीचन्द को देने—रानी रुपाली के एकखण्डी महल की ओर चले, कि राजरानी डोटियाली के आए से राज-पाट चौपट हुआ जा रहा है, कि राज-पाट अगर किसी चमार को मिल जाए, तो वह भी 'महाराज की जै', पाता है, और ऊँची जात, उठे हुए रुतवे और भरपूर भण्डारी घरानों की दुलहनें पाता है···कि, ऐसे ही, कभी राज-पाट का स्वामी किसी चमारिन को व्याह लाता है, तो वह भी 'मैया महारानी' की पदवी पाती है !

मगर, विना राज-पाट के चमारिन को व्याहने वाला ठाकुर-ब्राह्मण भी चमारों की ही विरादरी में गिना जाता है, कि, ऐसे ही, बिना

राज-पाट के स्वामी चमार के घर बैठने वाली राजरानी भी चमारिन कहलाती है, और महलों की मखमलिया सेज से बिछुड़ती है, सड़कों पर झाड़ू चलाती है !

जोशी दीवान सोच रहे थे, कि राजा कालीचन्द को लाख की बात एक यह समझा देनी है, कि राजा के लिए राज-पाट का महत्व राजरानी से अधिक ही होता है, कम नहीं।

एकखण्डी महल पहुँचे जोशी दीवान, तो द्वार-खड़ी दासी न्योली ने अपने दोनों अधरों पर दाएँ हाथ की एक अँगुली खड़ी कर दी—बाँए हाथ से जोहार बजा लाई, कि ··

समझदार के लिए संकेत ही बहुत होता है, कि लँगोट पहनने में निपुण आदमी केवल एक बेत (बालिश्त) कपड़े से ही अपनी लाज ढाँप लेता है !

*   *   *

मधुकण्ठिनी रानी रुपाली, महाराज कालीचन्द को अपने डोटी देश का लोकगीत सुना रही थी —

"हुणिया की तामा की तौली,
त्रिन पोत्याई को झाल लागन्छ।
यो पापी मुलुक, सुवाई,
त्रिन बोल्याई को चाल लागन्छ।"[1]

महाराज कालीचन्द बोले—"हमारी गढ़ी चम्पावत नगरी में तो बिना कुछ किए-कहे बदनाम नहीं होना पड़ता, रुपाली प्रिय ? पर, तुम्हारी डोटी में ऐसे लोग बसते हैं, जो बिना कुछ किए-कहे ही, आँख रहते का

1. हुणिया तो अपनी ताँबे की तौली राख से नहीं पोतता, इसलिए उसमें धुँए की स्याही लगती है, पर, हे प्रियतम, इस पापी राज्य में तो बिना कुछ किए, बिना कुछ कहे ही बदनाम हो जाना पड़ता है।

अन्धा, कान रहते का वहरा, और ज्ञान रहते का अचेतन वना देते हैं।"

रानी रुपाली मुसकुरा-भर दी, कि उसके रूप का रसिया विन मारे ही मरता है।

महाराज पुनः वोले—"रसिकों में भँवरा अपना नाम आगे लाता है, पर संध्या-समय वह फूल-कलियों की मिलनोन्मुख-पंखुड़ियों से मुकरने का प्रयास करता है। एक मुझ राजा कालीचन्द का नाम कहीं नहीं आता, कि मैं वन्द पंखुड़ियों में प्रवेश का प्रयासी हूँ।"

महाराज की इस वात में, विना काँटे की चुभन, अनवँटा-दर्द, अनवनी-वात है यह समझती है न, सो या वक्रता आकाश-विजली के चमचमाने, या रानी रुपाली के मुसकराने में है, कि इस मुसकराहट से पाला उसका पड़े, जिसके आगे-पीछे कोई न हो।

तीन दिवस, इकतीस रात्रियों का सहवास....

और महाराज कालीचन्द थे, कि सुवास ही पाई, पराग नहीं देखा। मिठास ही देखी, मधु नहीं चखा।

रानी रुपाली के सुख से महाराज वंचित ही रह गए थे।

एहो, रानी रुपाली की ऐसी प्रचण्ड रूप-राशि पर काल की चौकी, साँप की कुण्डली भली, कि महाराज कालीचन्द एक मास की मूर्च्छना, एक मास की कल्पना में, कि प्यास लगती है, प्यासा रह जाना पड़ता है। धार वहती है, कि वूंद कण्ठ नहीं उतरती, कि राजा कालीचन्द का प्यार-थका हिरन-छौना और रानी रुपाली का रूप प्रचण्ड प्रपात वन गया है ..

राजा कालीचन्द ने आवेशवश रानी रुपाली को अपनी वाँहों में वाँध लेना चाहा, मगर रानी रुपाली का रूप दुश्मनों की जागीर वन जाए, कि उसकी गोदी में सिर रखकर, नयन मूंद लिए।

* * *

दीवानजी घड़ी चार प्रतीक्षा करते रहे, पर चलते-जोगी का रुकना कैसा, सोते-राजा का जगना कैसा !

7

दाँतों को लगे पूस-माघ

जोशी दीवान प्रतीक्षा करते-करते, ऊबकर, चले गए थे, कि 'न्यौली, जब महाराज जागें, तो उन्हें मेरे आने की सूचना दे देना और कह देना, कि बाईस भाई बफौल गढ़ी चम्पावत पहुँच चुके हैं और उनकी बफौल-ढुंगी का पूजन शेष है!'

जब दीवान जोशी को लौटे भी यथेष्ट समय बीत गया, तो परिचारिका न्यौली, साहस कर, रानी रुपाली के निकट आई। न बोलती-सी बोली—"रानी जी···"

रुपाली रानी की भृकुटि तिरछी हो आई, कि परिचारिका न्यौली की बात कण्ठ-की-कण्ठ रह गई, धूल पांव-तले की सरक गई।

हाथ जोड़, बोली—"महारानी जी····जी···"

"कहो," रानी रुपाली ने अभयदान दिया।

"महाराज जब जागें, रानीजी···ना, ना, हाए, मेरी इस बावली

जीभ को चील-कौवे लग जाएँ ।"—न्यौली चरणों झुक आई—"महारानी जी, जव राजाजी जगें, तो उन तक यह वात पहुँचा दीजिएगा, कि वीरगढ़ी वफौलीकोट की माटी-परिपाटी को धन्य करने वाले, नरवीर वाईस भाई वफौल आज गढ़ी चम्पावत नगरी आ गए हैं।"

रानी रुपाली के वचन कैसे, कि या तिखास छोटी जात की मिर्ची, या डोटी गढ़ी की कन्या रुपाली के वैनों में ही पाई जाती है।

"छोटे मुँह की, कि जात तेरी छोटी। वात वड़ी करती है, कि तेरी जीभ अटारी पर रखकर 'घुघुतिए का कौवा'[1] वुलाऊँगी। क्यों री, क्या तेरे वाईस वफौलों की दूती हूँ मैं ? वफौल होंगे यार तेरे, कि उनका सन्देश कहने को मेरे पाँव की जूती भी नहीं चटकेगी।"

"रानीजी ! वचन वैरी हो गए हैं, पाँव की जूती हूँ, पोंछ साफ कर लेना, टूटे कील ठुकवा लेना।" न्यौली एक हाथ नीचे, एक हाथ ऊपर की जोहार वजा लाई—"वाईस भाई वफौल काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के विना छत्र के सम्राट् हैं, कि उन्हें देखकर, वयार अपनी दिशा, पनार अपनी चाल विसर जाती है। महाराज उन्हें अपने सिर का छत्र, पीठ का आधार मानते हैं, महारानीजी !"

"ओछी तू, ठहर, तेरे मंगेतर को लड़ाई की वेला विना ढाल-तलवार का, सवसे आगे रखवाऊँगी।" रानी रुपानी वोली—"जव से इस गढ़ी चम्पावत नगरी में मेरे चरण पड़ गए हैं, महाराज के सिर का छत्र, पीठ का आधार—मेरे मुँह के वैन, मेरे नयन के सैन हैं। वाईस भाई वफौलों को अपने वाईस दरवाजों का दरवान, वाईस वैलों का हलिया वना के नहीं रखा, तो मेरा नाम रानी डोटियाली···"

"महारानी रुपाली कहिए···" न्यौली जोहार वजाकर, जिया ठेस

1. माघ-संक्रान्ति के त्योहार-पर्व को, कुमाऊँ में 'घुघुतिया त्योहार' कहते हैं। इस त्योहार-पर्व पर, पूरी-कचौरी छत पर रखकर, कौओं को न्योता जाता है, कि 'ले कौवा, पूड़ी ! मेरे हाथों को ला सोने की चूड़ी !'

मार गई।

'बाईस भाई बफील'''बिना छत्र के सम्राट् ! और, महारानी रुपाली के राज्य में ?" दुसह कोप के कारण, रानी रुपाली के दाँतों को पहाड़ के पूस-माघ लग गए, कि या अधर कँपकँपाने पर रानी रुपाली के दाँत ही रामबाण के फूलों-जैसे फूलते हैं, कि या पतली छाल उतारने पर भिगाए हुए बादाम ही उजले होते हैं !



8

केशरिया कपोलों की कँपकँपी हल्दिया हथेलियों का आधार

रानी रुपाली के हंसपंखी-दाँतों की कँपकँपी से कुलबुलाता बाईस भाई बफौलों का वीरवंशी-नाम सेज-सोए राजा कालीचन्द के कानों पड़ा।

"बफौल मेरे वीर, बफौल मेरे प्यारे···वे आ गए हैं क्या, रुपाली प्रिय ?" अचकचाकर, उठते हुए, महाराज ने प्रश्न किया।

उत्तर न्यौली ने दिया—"हाँ, महाराज ! वे वीर बफौल आ गए हैं, और दीवानजी के साथ गए हैं। उनका कोई स्वागत-सत्कार इस बार नहीं हुआ, महाराज, कि उनकी बफौल-ढुंगी पहली बार अपूजी रह गई है। दीवानजी, बफौल-ढुंगी के पूजन-आयोजन के लिए घर-घर सन्देश भिजवा चुके हैं।"

"यह बहुत बड़ा अनर्थ हुआ है, भली ! बहुत बड़ी भूल मुझसे हो गई है। चलो, मेरा अश्व तैयार कराओ···और हाँ, रानी रुपाली प्रिय के लिए भी। हम दोनों उन वीर वफीलों का स्वागत-सत्कार और वफील-ढुंगी का पूजन करेंगे।"

"केवल एक अश्व को जीन कसवाओ, लगाम लगवाओ, तुम ! केवल राजाजी के अश्व को !" रानी रुपाली, रोषपूर्ण नेत्रों से राजा कालीचन्द की ओर निहारती, बोली—"बाईस भाई वफील होंगे राजाजी को लाड़ले। किसी का स्वागत-सत्कार करे, मेरा अँगूठा !"

···और रानी रुपाली के अनार-फूल-से अँगूठे की रक्त-शिराएँ भर आई।

न्योली किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी खड़ी-खड़ी रह गई।

राजा कालीचन्द बुझे-बुझे स्वर में बोले—"हाँ, केवल एक अश्व तैयार कराओ, भली ! तिरजाट[1] राजा कालीचन्द का···"

रानी रुपाली ने हाथों की अँगुलियाँ चटकाई, पाँवों की ठसकाई। मुँह फेर लिया।

राजा कालीचन्द क्या गए, कि रानी रुपाली के मुँह में मक्खी चली गई—आज तक राजा कालीचन्द मेरे सरोवर की मछली, मेरे गोठ का बैल बना रहा, कि किसी के बुलाए से पग नहीं उठा सका, कि मैं चुम्बक की शेरनी, वह लोहे का शेर था।

और आज—बाईस भाई वफीलों की वफीलीकोट में तिरिया लड़की को, गैया बछड़े को जन्म दे, कि आषाढ़-सावन वहाँ वर्षा न हो, पूस-माघ धूप न आए।

न-जाने उनके नाम का मंत्र क्यों राजा कालीचन्द को पिंजरे का तोता बना उठा ले गया, कि मेरे रूप-यौवन का सिर-चढ़ा जादू, पाँव-तले उतर गया !

रानी रुपाली को सोच पड़ गया, कि ऐसे कैसे अपनी उम्र को न

---

1. पत्नी का दास।

काटने वाले वकील हैं, कि उनके नाम के आगे मेरा रूप भी कच्ची डोर, गई हिलोर बन गया ?

कुसुम-छड़ी हाथ ली, कि वह रानी रुपाली की कलाइयाँ देख शरमा गई। कांस्य-घण्टी पर चोट मारी, कि वह रुपाली का वचन सुन अगूंजी रह गई—"ओ, तुम···"

न्यौली ढिग आई।

हाथ जोड़ बोली—"आदेश, रानीजी···जीभ मेरी वैरन, कि इसके शहद का चाटना न मिले—आज्ञा दीजिए, महारानीजी !"

"सुनो, तुम···"

न्यौली सोचने लगी, कि या उतार-चढ़ाव पर्वत हिमाल, सिन्धु सुनील में ही हैं, या रानी रुपाली के सैन-वैनों में ही, कि पलक की धूप, पलक की छाया है।

"सुनो, तुम···तुम्हारा नाम क्या है ?" रानी रुपाली ने प्रश्न किया।

"न्यौली, महारानीजी !"

"तू मुझे सिर्फ 'रानी वा' कहा कर, सुन तू !" रानी रुपाली बोली—"नाम तेरा बड़ा प्यारा है। मुझे बड़ा प्यारा लगता है, कि मेरी डोटी गढ़ी में न्यौली नाम का एक गीत होता है, जिसे गाते समय हाथ-हथेली अधर-पार्श्व लगती है, तो उसमें अपने प्रियतम का प्रतिविम्ब दिखाई पड़ता है, कि उस समय मुँह से सिर्फ प्यार के बोल निकलते हैं। भली तू, तेरा नाम 'न्यौली' किस ब्राह्मण ने धरा, कि मैं उसे गोठ की गैया, भीतर का अन्न दान दूंगी।"

"महारानीजी ! हाए, मेरे वचनों को दुश्मन अपने घर ले जाए ! गोठ की गैया, भीतर का अन्न मेरी माँ को दीजिएगा, रानी वा, कि उसी ने मेरा नाम यह धरा है !" न्यौली घुटनों-झुक आई—"रानी वा, स्वभाव आपका, कि पल करेला, पल केला है, मैं इस स्वभाव को हाथ-आरती, माथ-अक्षत लिए फिरूँगी। मेरी माँ, महाराज के अश्वों के लिए, विशेष घासवाली थी, कि तब अश्वों को हाँकने के लिए सोंटा हाथ नहीं

लेना पड़ता था। सघन वनांचलों से, मेरी माँ हरी घास लाती थी। उस सघन वनांचल में एक चिड़िया बहुत चहकती थी, 'नेहू'…'नेहू'… नेहू'…माँ को उसका चहकना बड़ा भला लगता था। एक दिन माँ ने अपनी साथिन से पूछा, कि इस चिड़िया का नाम क्या है ? उसने बताया, 'न्यौली !' …तब अपने पिता जी से मैं माँ में थी।"

पुलककर, न्यौली ने बात को मिश्री-सा मुंह में ही रख लिया। कुछ ठहरकर, फिर बोली—"और जब माँ मुझ से पालना झुलाने गोद खिलाने वाली बनी—उसने मेरा नाम 'न्यौली' रखा, रानी बा, कि तब या उस सघन वनांचल में न्यौली चिड़िया ही चहकती थी, या अपनी माँ की गोद में मैं ही किलकती थी, कि अँगूठा मैं चूसती थी, दूध माँ के गले उतरता था !"

"पात चौड़े-चिकने केले के होते हैं, न्यौली तू !"—रानी रुपाली विहँस उठी—"बात लम्बी और भली तेरी होती है, कि तुझे मैं अपनी आँख का अंजन बनाके रखूंगी, कि गढ़ी चम्पावत नगरी में तेरा नाम पहले, मेरी सौतों का बाद में आएगा।…एक बात पूछूं ? बता तू, कि ये बाईस भाई बफौल अपनी उमर न भुगतें, कौन हैं, कैसे हैं ?"

न्यौली बोली—"रानी बा, वीर बफौलों को आँख न लगे, कि रूप उनका, शौर्य उनका ऐसा है, कि हमारी धरती-पार्वती को उनके लिए हमेशा राई-नून लिए फिरना पड़ता है। आज आप भी राजा जी के साथ जातीं, तो देखतीं, रानी बा, कि आज गढ़ी चम्पावत नगरी के पशुओं की आँखों में भी काजल आँजा गया होगा, कि रीती-आँखों से बफौलों को नहीं देखते।"

रानी रुपाली के केशरिया-कपोल क्रोध से कँपकँपाकर गिर पड़ते, कि उसने अपनी हल्दिया-हथेलियों का आधार दे दिया—"अच्छा, न्यौली, एक गोपन-पालकी तो तैयार करवा, भली तू ! जरा मैं भी तो देखूं, तेरे बाईस भाई बफौलों की सूरत !"

9

धरती-पार्वती के बेटों का संकल्प

बफौल श्रेष्ठों के बाईस स्वर्ण-अश्व चम्पावत गढ़ी के प्रशस्त राज-मार्ग पर हाँक पा गए, कि टाप धूल उड़ाते थे, लाप धरती नापते थे, बाँकी अयाल वाले, बाँकी चाल वाले घोड़े।

सूर्यमुखी-शंखों, ऊर्ध्वमुखी-तूर्यों, घनघनाटी-काँस्यघंटों और दनदनाटी-नगाड़ों की तुमुल-ध्वनियों से दिशाएँ चौंक रही थीं।

उत्सव और, उल्लास और था। नगर-वासियों का ठसका और, नगर वन्धुओं का लटका और था, कि हाथ-हाथ दीप-वाती, हाथ-हाथ फूल-पाती थी।

वीर-श्रेष्ठ बफौलों की गुलेल-ढुंगी का पूजन-आयोजन था, कि धरती-धर्मराज ने चार धाम का शासन, गगन-देवराज ने देवलोक का इन्द्रासन क्या पाया होगा।

महाराज कालीचन्द और दीवान जोशी बाईस भाई बफौलों के

ग्यारह-ग्यारह स्वर्ण-अश्व दाएँ-बाएँ लिए चल रहे थे, कि बाईस भाई बफौलों से उनके भी शीश ऊँचे, ललाट चौड़े हो रहे थे, कि धन्य हैं वो माँ-माटी जिन्होंने दूध-धार, अन्न-ग्रास देकर बाईस भाई बफौलों से काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की कीर्त्ति-पताका दिशा-विदिशा लहराई है, कि वीरों में या नाम पाँच भाई पांडवों का, या बाईस भाई बफौलों का ही आता है।

यथा-विधि, बफौल-ढुंगी का पूजन हुआ।

जोशी विज्ञानचन्द्र ने कुश-जल, तिल-अक्षत का संकल्प बफौलों के हाथों में दिया, कि बफौल मेरे वीरो, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की माटी-परिपाटी का नाम उजागर करना, कि हम सब कुमाऊँ की धरती-पार्वती के बेटों की एक-दिन-की-आयु तुम्हें लग जाए, कि जुग-जुग तक यह धरती-पार्वती तुम बाईस बफौलों को मधुर-मोदक, निर्मल आसन देती रहे, कि तुम इसकी सुरक्षा और कीर्त्ति के साक्षी-प्रहरी रहोगे !

बफौलों ने संकल्प धरती-पार्वती को सौंपा, कि प्राण-रहते कुमाऊँ-पछाऊँ के दूध-पूत, माटी-परिपाटी पर आँच न आने देंगे। हमारी धरती-पार्वती की ओर जिसकी कानी आँख लगेगी, या धूप वही सेंकेगा या हम ही, कि कुमाऊँ की माटी-परिपाटी की सुरक्षा के लिए, हमारी बाईस हथेलियों में से एक भी बिना सिर की नहीं दिखेगी !···कि, हमारे वंश में उत्पन्न होने वाले बालक के दूधिया-दाँत भी इस धरती-पार्वती की सेवा करते ही टूटेंगे !

कुमाऊँ की धरती-पार्वती के लाल, वीर मेरे बफौलो !

···धन्य हो तुम, कि तुमसे कुमाऊँ-पछाऊँ की धरती-पार्वती का यश हाथ-ऊँचा, माथ-चौड़ा होता है, कि इस वीर-कथा की बेला हम तुम्हारा नाम लेते हैं !

❀

10

चार भाई मल्ल बाईस भाई बफौल

गढ़ी चम्पावत नगरी के नर-नारी बफौल-ढूंगी का पूजन कर ही रहे थे, कि अपने सामने हिमालतन मल्लों को देखकर थाल की फूल-पाती थाल, हाथ की दीप-वाती हाथ में लिए रह गए।

सब एक-दूसरे का मुख देखते रह गए, कि अचल पर्वतों में हिमालय का नाम सुना था, चलने वाले पर्वत आज देख रहे हैं !

उन चार मल्लों के नाम आने से कथा भारी होती है, कि उनके राह की पुल कच्ची, गाँव की गैल सँकरी हो जाए। वचन क्या बोले—"यही राजा कालीचन्द की गढ़ी चम्पावत नगरी है क्या ? जहाँ बाईस वज्रों का कड़कना, बाईस बिजलियों का चमकना होता है ?"

नगरवासियों को यही अनुमान लगाना कठिन हो गया, कि इन

चार चल-पर्वतों की कौन-सी कन्दरा से यह गगन-भेदी हुंकार आ रही है।

राजा कालीचन्द और जोशी दीवान भी आश्चर्य से अबोले रह गए। तब वीर बफौल क्या बोले—"हाँ, हिमालतन परदेशी अतिथियो! बाईस बेटों की सेवा लेकर, नौलाख बेटों को मेवा देने वाली धरती-पार्वती और गढ़ी चम्पावत नगरी यही है, कि जहाँ के महाराज के राज्य-द्वारों में बाईस चौकीदारों का पहरा है।"

"बाईस कंठों से एक स्वर बोलने वाले, बाईस सिरों से एक संकेत करने वाले तुम—तुम कौन हो? गढ़ी चम्पावत नगरी के बाईस वज्र, बाईस बिजलियाँ तुम्हीं तो नहीं?"—मल्ल अभिमानी परिहास करते बोले।

"कुमाऊँ की धरती-पार्वती के बाईस बेटे, गढ़ी चम्पावत नगरी की सुरक्षा के बाईस प्रहरी—बाईस भाई बफौल हम हैं, अतिथि वीरो! इससे अधिक कुछ नहीं।"—बफौल विनम्र बोले।

"गढ़ी चम्पावत नगरी के बाईस प्रहरी···हा···हा···हा"—मल्ल अट्टहास कर उठे—"पंचनाम देवों के गुरू की धूनी में भभूत न रहे, कि न वह पंचनाम देवों-जैसे मूर्खों को गुरू-ज्ञान, धूनी ध्यान और भभूत-दान देता, न वो महामूढ़ चार हाथियों को बाईस मच्छरों के देश में भेजते। अरे, गढ़ी चम्पावत नगरी के बाईस वज्रो, द्वार के चौकीदारो! बोलो, बाईस मक्खियाँ तुम्हारी गढ़ी में घुस आएँगी, तो उन्हें भी हाँक पाओगे, या नहीं?"

बफौल क्या हँसते है, जैसे महाकाल के हिमाल देश में फूल-फूल बरफ गिरती है। बोले—"परदेशी मक्खियों के लिए हम गुड़ की भेली रखे रहते हैं, वीरश्रेष्ठो!"

बफौलों के वचन क्या सुने, कि मल्ल अभिमानी पाताल हुंकार, आकाश गुंजार पहुँचाने लगे, कि गढ़ी चम्पावत नगरी के नर-नारियों को भय से मूर्च्छना आने लगी।

जोशी दीवान हाथ जोड़ बोले—"एहो, अतिथि वीरो! अकारण क्रोध वीरों को नहीं, भाँड़ों को ही शोभा देता है। पहले यह तो आप बताइए, कि आप कौन से शुक्राचार्य के शिष्य हैं, कि आपकी हुँकार से हमारे खेतों की हरियाली मुरझाने लगी है। एक कंस को द्वारका-नरेश भगवान श्रीकृष्ण यमपुर पठा चुके, तुम किस कंस के पठाए आए हो, कि गढ़ी चम्पावत नगरी पर अकारण कानी-आँख, ओछी-दृष्टि फेर रहे हो?"

जैसे जलती-धूनी में घृताहुति पड़ गई हो—मल्ल ज्वालामुखी-जैसे फूटने लगे—"सुन रे, गढ़ी चम्पावत के वैरी तू!...हम पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र हैं, कि हमारा नाम सुनकर पर्वत कन्दराओं में घुसने लगते हैं, नदियाँ वालू में छिपने लगती हैं। और हम पंचनाम देवों के पठाए गढ़ी चम्पावत में आए हैं, कि तुम्हारा राजा कालीचन्द या हमें जोड़ के मल्ल देगा, या चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन देगा।"

"पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र, मल्लो!" वाईस भाई बफौल बोले—"पंचनाम देवों का पावन नाम हम पड़ती-संध्या, जगती-भोर में लेते हैं, कि तुम भी हमारे आदरणीय अतिथि हो। आज हमारे अतिथि रहो। गढ़ी चम्पावत का उत्सव देखो, कि आज घर-घर दिए जले होंगे, द्वार-द्वार पर तोरण सजे होंगे। आज हमें अतिथि-सत्कार का अव... कल गढ़ी चम्पावत नगरी में वीर-पर्व मनाया जाएगा। हम वाईस भाई बफौल, तुम्हारी युद्धेच्छा भी पूरी करेंगे। जय-पराजय तो विधि-हाथ है, पर अपयश-माथ न रहे, महाराज कालीचन्द के दरबार से, कुमाऊँ की धरतीपार्वती की देली से, कोई रीते-हाथ न लौटे, हम अपने वाईस मस्तकों का हरजाना-नजराना देंगे!"

अज्ञानी मल्ल और बिफर उठे, कि गरम मिट्टी ठण्डा पानी डालने से और ज्यादा फूटती है। अन्यायी वचन बोले—"ओरे, वाईस भाई वफौलो! सुनो, कि वाईस वज्र, बाईस बिजली होगे तुम अपने राजा कालीचन्द के दरबार के! हम मंत्र-पुत्र मल्लों के लिए, तुम बाईस

मच्छर भी नहीं हो, कि तुम्हें हम हथेली की सुर्ती बनाएँगे। अरे, बफौलो ! सुनो, कि तुम क्या हमको अपना पाहुना बनाओगे ? तुम्हारे घर-जमाई हम नहीं, साले-बहनोई हम नहीं। हम वीरधर्मी-मल्ल हैं। हमने प्रण किया है, जब राजा कालीचन्द के दरबार में बाईस वज्रों का गरजना, बाईस बिजलियों का कड़कना बन्द कराएँगे, तब मुट्ठी-अन्न, घूँट-पानी ग्रहण करेंगे !"

और पूर्विया मल्ल चार हाथ आगे सरक आया, कि धरती धँसने लगी। बोला—"सुन रे, राजा कालीचन्द ! हाथ-हाथ की दीप-आरती हमारी करवा, फूल-पाती हमें चढ़वा और हाथ-हाथ की जोहार हमें दिलवा, कि नहीं तो, आज हम तेरी गढ़ी चम्पावत नगरी में मनुष्य के नाम की मक्खी भी जिन्दा नहीं छोड़ेंगे !···और सुन, अपने इन बाईस वज्रों को हमारे चरणों में फूलों-सा चढ़ा दे, कि हम ठोकर मारकर, प्राण-दान दे देंगे, कि इनके मुंड मूंड, कान फाड़कर संन्यासी-सोंटा हाथ, भभूत-त्रिपुण्ड माथ देकर, अपने धर्म-पिता पंचनाम देवों की सेवा में भेज देंगे, कि ये तुम्हारी गढ़ी चम्पावत नगरी के बाईस पहरेदार पंचाचूली-गुरुस्थली के बाईस लकड़हार[1] बनेंगे। चिमटा बजाएँगे, समिधा जलाएँगे—हमारे नाम का जस गाते हुए, झोली-पसार मुट्ठी-दान माँग लाएँगे, कि पाँच राखधारी हमारे धर्म-पिता हैं, उनसे भी पहले इन बाईस खाकधारी बफौलों का नाम आएगा !"

या धीरज पर्वतराज हिमाल को हीं है, या बाईस भाई बफौलों को ही, कि ऊँचे पर्वत, गहरे सागर-जैसे थोड़े से हिलते नहीं, जरा से मचलते नहीं।

विहँस बोले—"सुन हो, पूर्विया मल्ल ! शेरनी की कोख से गीदड़ जनमता, 'हुआ-हुआ' करता, विधि का लेख मान लेते। ज्ञान-ध्यान के स्वामी पंचनाम देवों के भभूत-गोले से तेरी उत्पत्ति हुई, कि शेर का चोला,

---

1. लकड़ी ढोनेवाले।

गीदड़ की आवाज पाई है तूने। हथेली की सुर्ती अपने सिर की जुएँ बना लेना, भाँड-धर्मी मल्लो ! कि, तुमसे पंचनाम देवों का नाम भी बदनाम होता है।··· सुन रे, घमण्डी मल्ल पूर्विया ! पहले हमारी बफौलकोट से फेंकी यह गुलेल-ढुंगी उठाकर प्रवेश-द्वार से एक ओर करले, फिर मल्ल-युद्ध को पग बढ़ाना, कि हम तुम्हारे चरणों के दास बन जाएँगे। नीची आँख, काली कीर्त्ति लिए, घर-घर-दर-दर तुम्हारे नाम की भीख माँगेंगे।"

पूर्विया मल्ल ने तमककर, कनिष्ठा से बफौल-ढुंगी को उठाकर फेंक देना चाहा, कि अँगुली टूटकर बकरी के काने थन-सी लटक गई। एक हाथ से उठाना चाहा, कि हाथ कंधे से उस तरफ चला गया, कि पीठ पर या तो चंचला-चपला तिरिया की लटी ही झूलती है, या पूर्विया मल्ल का हाथ ही आज झूलना झूलता है।

अपनी असमर्थता से, पूर्विया मल्ल पानी से पतला, पराल (पुआल) से हल्का पड़ गया, कि बाएँ हाथ की जोहार बजाकर, बोला—"सुनो हो, वीर बफौलो ! यह विश्वास नहीं होता, कि यह पर्वत से भारी पत्थर, तुमने गुलेल-ढुंगी से फेंककर, बफौलीकोट से यहाँ पहुँचाया होगा।···तुम इसे गुलेल-द्वारा यहाँ से बफौली कोट को फेंको, हम तुम्हारे गुलाम बन जाएँगे, कि जब तुम राजा कालीचन्द के दरबार में प्रवेश करोगे, सबसे पहले तुम्हें हम शीश झुकाएँगे, कि तुम्हारी चाकरी बजा लाएँगे !"

बफौल मेरे वीर, विहँस आगे बढ़े।

लुवासार गुलेल उठाई, बारह बीसी की ढुंगी चढ़ाई, कि ढुंगी कहाँ फेंकी, बफौली-कोट को !

पराजय से मल्लों के शीश झुक गए, कि 'खाक से बने हम, तुम लाख से बने हो, कि हम चार भाई मल्ल तुम वीर बफौलों की वीरता को नमस्कार करते हैं !'

जोशी विज्ञानचन्द, राजा कालीचन्द घुटने-ऊँचे, गज-चौड़े हो गए, कि धन्य हैं हम, कि बाईस भाई बफौलों का पहरा है, हमारी नाक-लाज पर।

गढ़ी चम्पावत नगरी के नौ लाख तारों ने 'जयजयकार' करते हुए, फूल-पाती चढ़ाई, दीप-बाती फिराई, कि तुम वफौलों से हमारी धरती-पार्वती पुत्रवंती, पौत्रवंती है, कि हम उस माटी का तिलक लगाते हैं, जहां वफौलों के चरण पड़ते हैं।

पर, वफौलों के मुँह पर हर्ष की नहीं, विषाद की रेखाएँ थीं।

दुधाधार कुमैल का एक पल्ला टूट गया था, कि वफौलों का हिया हारमान, जिया उदास हो गया था—आज वफौल-दूंगी वफौलीकोट नहीं पहुंची होगी!

*   *   *

जोगी दीवान और राजा कालीचन्द ने उनकी आरती उतारी, कि 'वीर वफौलो, हम तुम्हारी जय बोलते हैं, कि तुम्हारे बल-विक्रम से चांपी चम्पावत गढ़ी का नाम धन्य-धन्य होता है!'

वफौल, मेरी कथा के स्वामी,

काले बादल छांट गए, गोरी किरनें चमक गए, कि या स्याही को सोखता ही सोखता है, कि या व्यथा को वफौल भी पी जाते हैं!

○

11

पूजा के अक्षत, आँचल के अदिन

मल्ल बाईस भाई बफौलों से बोले—"वीर श्रेष्ठ बफौलो ! हाथी शरीर से विशालकाय होते हुए भी केशरी से कम शक्तिशाली होता है। हम आप बाईस बफौल केशरियों की शरण हैं, कि जन्म हमें पंचनाम देवों ने दिया है, पालन हमारा तुम करो, कि हम पंचनाम देवों से भी पहले तुम्हारा नाम लेंगे, कि बुलाए से, पास आएँगे, लगाए से, दूर जाएँगे। राजा कालीचन्द के दरबार में चार द्वारों का पहरा हमें भी सौंप दो, कि हम चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन और कहाँ पाएँगे ?"

वीर बफौल राजा कालीचन्द से बोले—"सुनो हो, महाराजा ! इन पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्रों को गढ़ी चम्पावत नगरी की चार दिशाओं

के चार-द्वारों का पहरा सौंप दो, कि ये आपकी चार कीर्त्ति-पताकाओं-जैसे द्वार-द्वार फहरते रहेंगे।"

जोशी दीवान बोले—"सुनो हो, मेरे वफौल बेटो ! आज यह मल्ल पाँव-तले हैं तुम्हारे, कि जीभ निकाल जीविका माँगते हैं। समय कभी विपरीत हो गया, तो चुटिया पकड़के नचाएँगे, कि या मथुरा में कंस का राज था, या गढ़ी चम्पावत नगरी में इन चार मल्लों का होगा। दूसरे, अड़तालीस मन अन्न दिवस का ! गढ़ी चम्पावत नगरी का आधा अन्न तो ये ही चौपट कर जाएँगे। कौन जाने, काल कब करवट ले, पवन कब दिशा बदले ?"

वीर वफौल बोले—"आप ठीक कहते हैं, दीवानज्यू ! अज्ञानी-अभिमानी शत्रु को आश्रय नहीं देना चाहिए। ये पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र हैं, सो इनकी प्राण-हत्या का पातक सिर नहीं लेना चाहते हम। आज इन्हें अतिथि मानकर, चार मन कलेवा, आठ मन भोजन दे दिया जाए। कल की भोर, चार मन का कलेवा देकर, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की सीमा-पार जाने का आदेश !"

पर राजा कालीचन्द की क्या मति बिसर गई, क्या दशा रूठ गई। बोले—"वीर मेरे वफौलो, कल नहीं, सात दिवस बाद विदा करना इनको। गढ़ी चम्पावत नगरी का अन्न-कोष इतना कन्जूस नहीं, कि दिवस सात इनके पेट न भर सके। सात दिवस ये चार दिशा-द्वारों के द्वारपाल रहेंगे, कि बारह खण्ड धरती में मेरा नाम जाएगा।"

मल्ल बोले—"हम आज्ञा के आधीन हैं, महाराज ! बोले से रहेंगे, संकेत से जाएँगे।"

न वफौल, न जोशी दीवान कुछ बोले, कि पूजा जब खण्डित होने लगती है, तो थाली के अक्षत बिखरते हैं, कि अदिन जब आँच वाले होते हैं, तो वाणी के वचन रूठ जाते हैं।

12

गोपन-पालकी, उघड़ी-आँखें—

जाई का फूल बीनने,

गाई का दूध दुहने की वेला निकट आ रही थी, कि बाइस सूर्य पश्चिम से पूर्व को लौट रहे थे, एक सूर्य पूर्व से पश्चिम जा रहा था।

वाईस सूर्य धरती के,
एक सूर्य आकाश का—कथा सुनने वालो!

* * *

गोपन-पालकी का वातायन-वस्त्र एक ओर कर, रानी रुपाली ने अपने हिरनिया-नेत्रों को उघाड़ आर-पार हेरा—वाईस भाई वफौल, जोशी दीवान और राजा कालीचन्द के दाएँ-वाएँ पार्श्वों में, बाईस सुवर्ण

अश्वों पर वैठे गढ़ी चम्पावत नगरी को धन्य कर रहे थे, कि मन-मन के मोदक, कण्ठ-कण्ठ की जयकार पा रहे थे, कि काम्वोजी-अश्वों को एक भार वीर वफीलों का, एक भार उनके कण्ठ की फूल-मालाओं का हो रहा था।

"न्यौली…"—अँगूठा ठुड्डी, तर्जनी अधरों से लगाकर, रानी रुपाली वोली।

"हाँ, रानी वा…"

"तू सच कहती थी…"—रानी रुपाली ने मुंह अन्दर कर लिया। कुछ क्षण नेत्र मूंद रही। फिर न्यौली का हाथ अपने हृदय पर धर लिया।

वापस पालकी एकखण्डी-महल के निकट पहुँच चुकी थी। रानी रुपाली नयन मूंदे, न्यौली का हाथ हृदय-धरे, खोई-खोई थी, कि न्यौली ने कर्ण-पार्श्व में अँगुली फिराई—"रानी वा !"

रानी रुपाली न वोली। किसी मधुर मूर्च्छना में सुधि-विसरी वह, सद्यःमुकुलित कमल-पाँखुड़ियों-जैसे उसके नयन अवखुले, अधर कँपकँपे—कि न्यौली ने रानी को वाँहों में भर लिया—"काश, आज एक घड़ी को मैं पुरुष वन जाती रानी वा !"…

"तव तू मुझे अपने में न वाँध पाती, न्यौली ! नौनी के वर्तन में नौनी डालने से कुछ नहीं वनता-विगड़ता, पर जव आग से नौनी का साक्षात्कार होता है…"

"अभी तो नहीं हुआ न, रानी वा ?"—न्यौली राजा कालीचन्द की मूर्च्छना की प्रहरी रही थी।

"सूर्य का तेज चन्द्रमा वरण नहीं कर सकता, न्यौली तू !" तीव्र-स्वर में रानी रुपाली वोली।

एकखण्डी-महल आ चुका था। गोपाल-पालकी रुकी। रानी रुपाली अपने कक्ष में चली आई और साथ में न्यौली।

झूले पर अधलेटी-लेटी, रानी रुपाली वोली—"आज मुझे खूब झूला झुला दे, न्यौली !"

13

आँचल की छाया, आँखों का काजल

आज महारानी रुपाली ऋतुवती हुई है, कि अब चन्दवंश के चलने की आशा हिया मोद भर गई है।

न्यौली ने यह शुभ-सवाद सारे अन्तःपुर में फला [illegible]

महारानी भद्रा दौड़ी-दौड़ी आईं। हाथ में जल-कलश, आँचल में विल्व-फल लिए, कि मेरी बहन रुपाली कलश-सी भरे, बिल्वफल-सी फले।

छहों अन्य रानियाँ रिस-भरी, अपने-अपने खण्ड पड़ी रहीं, कि यह डार फल गई, यह लता फूल गई, तो हमारा बाँझपन वैधव्य से भी दुसह हो जाएगा, कि राजाजी के लिए हम बिना सुवास-पराग की कलियाँ हो जाएँगी, बिना नीर की कलशियाँ, कि न हम महक पाएँगी, न हम छलक पाएँगी।

पर, महारानी भद्रा का मन और, कि जल-कलश में दूध-दही, घी-शक्कर और गोमूत्र डालकर, 'पंचामृत' (पंचगव्य) वनाया, फल रानी रुपाली के आँचल, जल अंजलि में दिया और सघन-हरित पीपल-वृक्ष की छाया में स्नान करवाया, कि वेर सेजवती, वेर फलवती होना !

"फलनेवाला वृक्ष पहले फूल से फल देता है, वड़ी रानी ! ऊसर में दिवस-दिवस की वर्षा से भी अंकुर नहीं फूटता, कि सेजवती वन जाने मात्र से, नारी पुत्रवती नहीं वन जाती !"—रानी रुपाली के स्वर का निश्चयात्मक दर्प-व्यंग महारानी का मन दुखा गया।

फिर भी, सस्नेह वोलीं—"महारानी तुम, कि आज तुम प्रथम वार ऋतुवती हुई हो, दिवस पाँच से मेरे हिस्से की भी सेजवती हो लेना, कि तुम्हारे पुत्रवती होने से मेरे पुण्य उजागर, पाप क्षीण होंगे। सो, तुम्हारे कड़ुए वोलों की औषधि से अपनी अपूर्णता का उपचार कर लूंगी।"

महारानी भद्रा की आँखें छलक आईं।

साशीर्वाद वोलीं—"महारानी, यहाँ रहती और, तो तुमसे उम्र की वड़ी, मानकी छोटी वनकर तुम्हारी सेवा करती, कि तुम राज-दरवार को जातीं, तो मैं चँवर झुला देती।···पर तुम्हारी शुद्धि के दिवस तक ठहरूँगी, कि उस दिन तुम्हें अपनी आँखों सेजवती देख जाऊँगी, क्योंकि महाराज से शंका है।···और फिर अलकापुरी चली जाऊँगी···सो, आज तुम्हें फिर एक वार सिर्फ 'रानी वहन' मानकर, आँचल की छाया, नयनों का काजल देती हूँ, पहले प्रथम फूल से फलवती वनना तुम।···"

और, चली आईं महारानी भद्रा, कि वादल जो हिमालय से टकराकर पीछे लौटने पर वरसते हैं।

14

एक गगन-सूर्या, एक आकाश-चन्द्रावती—

आज बड़ी भोर न्यौली उठी, कि रानी रुपाली वा की सेवा में जाऊँगी, कि आज की रात अपने 'उनकी' सेवा में रही हूँ। पर, जब रानी वा की सेवा में जाऊँगी, तब 'इनका' रुतवा उठेगा, वेतन बढ़ेगा। नहीं तो, लड़ाई में सबसे आगे बिना ढाल-तलवार का इनको रखवाएँगी। मरे,

"इधर आ, भली !"

न्यौली रुक गई। ानी द्रा पूजा-गृह को जा रही थीं। स-भरी, अपने- ले चल, कि मेरे हाथ अशक्त बोलीं "भली तू जा ी भूल गई, हमारा व को प्रसाद दूँगी, कि तेरा बुद्धिवल्लभ गढ़ी हो चले हैं। मैं ज के लिए हम बिना प्रथम हार (पंक्ति) में बैठेगा। मुट्ठी-चम्पावत नगरी के विद्व शियाँ, कि ना, बुद्धि-वल्लभ तेरी नींद को वैरी भर मोती दूँगी, कि

बनकर जिएगा।...'' और हँस पड़ी, कि न्योली ने पूजा-थाल थाम लिया।

पूजा की यथाविधि समाप्ति पर, महारानी ने महाकाल को अर्पित राजवंशी सूर्यमुखी-शंख बजाया, कि न्योली ने कान अँगुलियाँ धर लीं—"यह शंख नित्य आप ही बजाया करती थीं, महारानी वा ? मैं समझती थी, कि महाराज की अनुपस्थिति में दीवान जोशी बजाते हैं।"

"धीरे बोल, न्योली, धीरे, कि रहस्य की बातें बयार-सँग उड़ती हैं।" महारानी घबराए-स्वर में बोलीं—"भला दीवान जोशी को क्या अधिकार, कि वो इस राजवंशी सूर्यमुखी-शंख को बजाएँ ? इस शंख को केवल राजपुरुष ही बजाने के अधिकारी हैं, भली !...और कोई नहीं।"

"आप महारानी वा ?"

"मैं भी नहीं, न्योली !" महारानी हाथ जोड़ती बोलीं—"पर, तू मेरे रहस्य की साक्षी रहना, किसी से कहना नहीं। महाकाल के इस शंख को बजाना तो दूर, नारी के लिए, इसे स्पर्श करना भी निषिद्ध है, भली ! मेरी सौतों को यह रहस्य मालूम हो गया, तो बात राज-परिषद तक पहुँचेगी और गुरुतर राज-दण्ड की भागी बनूँगी मैं। तू मेरी लाड़ली सखी है, मेरी लाज रखना, कि यह भेद खुलते ही गढ़ी चम्पावत नगरी में मेरे लिए ठौर नहीं रह जाएगी।"

"आप मेरी महारानी वा हैं, भला मैं औरों से आपकी बात कहने लगी ? पर इतना बता दीजिए, आपके इस शंख को बजाने में, अपराध की क्या बात है ?"

"किसी से न कहना," भद्रा देवी हाथ जोड़कर, बोलीं—"नारी-द्वारा इस शंख का वादन अनिष्ट का मूल माना जाता रहा है। भगवान् न करे, कल गढ़ी चम्पावत नगरी पर काले बादल घिर आएँ, तो पहला वज्र मुझपर गिरेगा, पहली बिजली मुझपर टूटेगी।... मैं तो सिर्फ एक संकल्प-सिद्धि के लिए यह त्रिलोक-पूजन कर रही थी, कि मेरी सौत रुपाली कलश-सी भरे नहीं, फूल से फले नहीं।"

—कि, सघन वनांचल में 'न्यौली' चिड़िया ही चहकती है,

कि, गढ़ी चम्पावत नगरी की अन्तःपुरवासिनी रानियों के कानों में न्यौली दासी ही बोलती है—महारानी भद्रा महाकाल का राजवंशी सूर्य-मुखी-शंख बजाती हैं !···

सात सौतेली रानियों के गाँवों में कभी बादल न बरसें, न सरसों फूले, कि पधानियों के हाथ मेंहदी न लगे, पटवारिनों के सिर पिछौड़ा न पड़े—जो महारानी भद्रा के अनिष्ट को सात मुखों वाला एक शूल, सात जीभों वाला एक नागिन बन गईं, कि छाती चीर देंगीं, विष बुझा देंगी।

षड्यन्त्र रचने लगीं, कि सर्प के विष की औषधि हिमालके स्यांकुरी-भ्यांकुरी वनों में मिलती है, पर सौतिया-दर्प की दवा वैद्य सुषेन[1] के पास न थी। महारानी भद्रा तो बिना काँटे की कली, बिना छल-बल की लली।

···और रमौलिया इस कथा-घड़ी हुड़क से हाथ हटा, छड़ी टेक आराम करता है, कि एक चंचला, चपला, चटुली डोटियाली रुपाली रानी और दूसरी महारानी भद्रा—दोनों का नाम लेता है, कि पहली को बन के कटीले-काँटों को और दूसरी को आँगन की तुलसी, गोठ की गैया को सौंपता है!···कि, एक के सत्यानाशी रूप को शनिश्चर की दशा लग जाए, (हट्ट, तेरी गोरी चमड़ी गल-गल के गिर जाए !) कि जो अपने कुकर्मों से दीपक की ज्योति धुँधली करती है, सुखी जीवन में क्लेश भरती है !···कि, दूसरी के लक्ष्मी-स्वरूप को धूप में शीतल पानी, भूख में मीठे मोदक मिलें, कि जो, पति की वंश-रक्षा के लिए, काँटे अपने पाँवों लेती, फूल पराए पाँवों बिछाती है, कि एक गगन-सूर्या, दूसरी आकाश-चन्द्रावती है—कि, एक धूप जलाती है, दूसरी छाँव सुलाती है।

1. सुषेण वैद्य।

15

कल्याणी कुल-वधू

"महाराज !"

राजा कालीचन्द ने मुड़कर देखा। महारानी भद्रा देली-खड़ी थीं।

"एक पखवारे कृष्ण-पक्ष, एक पखवारे शुक्ल-पक्ष सभी ठौर रहता है, महाराज !" महारानी भद्रा बोलीं—"एक मुझ अभागिन के महल में एक मास का कृष्ण-पक्ष होता है।⋯"

महारानी के स्वर की व्यथा से महाराज द्रवित हो गए। महारानी भद्रा से उन्हें कभी कोई शिकायत नहीं रही थी, और न ही उन्होंने स्वयं कभी महारानी के सिर पर सौत बिठाने की बात सोची थी। भद्रा देवी स्वयं ही उकसाया करती थीं—"मेरी अंशरूपिनी सौतों से आप मुझे ही पूर्ण नारी बनाएँगे, महाराज ! नारी के लिए, वंश-रक्षा से बढ़कर कुल-धर्म और कुछ नहीं। मुझसे चन्दवंश नहीं चलेगा।"

"अन्दर आ जाइए, नाथ !" हाथ जोड़कर, भद्रा देवी बोलीं—

"आज आप से विशेष बातें करनी है। कल मैं अलकापुरी के लिए प्रस्थान करूँगी।"

*　　　　*　　　　*

और आज,

महारानी भद्रा की सेज सोए हैं, राजा कालीचन्द, कि जैसे कोई दिन-भर चला-थका यात्री शीतल चाँदनी में सोया है।

बातों-बातों में, महाराज ने कह दिया—"तुम रानी रूपाली के पाँव भारी होने की पूछती हो, महारानी? बिना आग-पानी के संयोग के चावल नहीं पकता है, महारानी, बिना बादलों के टकराए वर्षा नहीं होती है।"

"इसमें दोष महारानी रुपाली का नहीं, महाराज!" महारानी विनोद करती बोलीं—"फूल में मधु-पराग अवश्य होता है, पर फूल स्वयं वह मधु-पराग भँवर-मुख तक नहीं ले जाता! छलकते जल-पात्र से कोई अंजलि-भर न पी सके, दोष जल-पात्र का नहीं। शेर के शाकाहारी होने की बात, आपसे सुन रही हूँ।"—और महारानी उन्मुक्त-भाव से खिलखिला उठीं।

महाराज खिसिया गए।

महारानी बोलीं—"ग्लानि न करें, महाराज! रानी बहन का सौन्दर्य ही इतना प्रखर-प्रचंड है, कि उसे सहसा नारी की आँखें ही नहीं झेल पातीं। फिर पुरुष तो वैसे ही परोसी-थाली के अभ्यासी होते हैं, आप तो महाराज ठहरे!"

"व्यंग्य न करो, महारानी!" व्यथित-स्वर में, महाराज बोले—"शायद तुम मेरे मर्मस्थल पर चोट कर, मेरी अवहेलनाओं का प्रतिशोध लेना चाहती हो? पर, वैसे मैं स्वयं पछता रहा हूँ, महारानी, कि किस आग को अपने घर ले आया हूँ। रुपाली साधारण औरत से कुछ अधिक है, महारानी!"

"मुझे इससे 'ना' नहीं।"

"और मैं उसकी दृष्टि-परिधि में पहुँचते ही, पिंजरे का पंछी बन जाता हूँ, कि उसके कटीले-रसीले सैन-बैनों के सीखचों को तोड़ना मेरे वश की बात नहीं, महारानी !" राजा कालीचन्द बोले—"तुम इसे मेरा अपौरुष कह लो। मेरी कायरता कह लो।..."

"कूदने से पहले, सरोवर गहरा दिखाई देता है, महाराज !...और चढ़ने से पहले, पहाड़ ऊँचा।" महारानी बोलीं—"बहन रुपाली का प्यार जहाँ एक बार आप पा लेंगे, फिर यों सन्ताप न होगा। चन्द्रमा का प्रकाश शीतल होता है, पर उससे धरती शस्यवती नहीं होती। सूर्य का प्रकाश प्रचण्ड-प्रखर अवश्य होता है, पर धरती की गोद उसी से लहलहाती है। मुझमें और बहन रुपाली में, यही अंतर है, महाराज ! ...और आपको चन्दवंश की अक्षयता के लिए, मेरा नहीं, बहन रुपाली का आँचल-छोर ही थामना है।"

महाराज चुप रहे।

महारानी फिर बोलीं—"अभी आपने मेरे रुष्ट होने की बात कही थी, पर प्रतिशोध की बात मैंने स्वप्न में भी नहीं सोची, नाथ ! मुझे ऐसा लगता है, बहन रुपाली ही मेरी पूर्णता का प्रतीक बन सकेगी। उसके कोप पर भी मेरा प्यार निछावर है।...पिछले पखवारे में ऋतु-मती हुई थी, नाथ ! जाने का निर्णय कर चुकी थी। सो अन्तिम बार, केवल एक बार आपसे ऋतुदान चाहती थी, वह मुझे मिल गया है आज। आज से मेरे हिस्से के ऋतुदान की अधिकारिणी भी बहन रुपाली होगी। जब उसकी गोद भर जाए, मुझे सूचना देना न भूलिएगा, महाराज ! मैं उस दिन भगवान् जागेश्वर के मन्दिर में दिए जलाऊँगी। ब्राह्मण-गरीबों को अन्न-वस्त्र दान दूँगी। पितरों को पिण्ड, गैया को ग्रास दिलाऊँगी, कि उस दिन मेरा नारी-जीवन सफल हो जाएगा।"

स्नेह और भावावेग से बोझिल, महारानी का [illegible]

नौनी[1]—सा हो चला था। महाराज महारानी के प्रदीप्त-ललाट की रेखाओं में अँगुलियाँ फेर रहे थे।

महारानी पुनः बोलीं—"बहन रुपाली आपके प्रति असमर्पिता रह गई है। केवल इसलिए, कि आपने उसकी इच्छापूर्ति नहीं की है। असन्तुष्ट नारी का समर्पण भी निष्फल होता है, महाराज, कि ऐसी अवस्था में वह मन-भर का तन भले ही सौंप दे, सागर-सा मन नहीं सौंपती।"

विहान-बयार के संस्पर्श से, अब महाराज के नयन मुंदे जा रहे थे। महारानी भद्रा ने उनको अधर-स्पर्श से जगाया—"महाराज, बहन रुपाली प्रगल्भा है। उसके मान की संतुष्टि न होगी, तो चन्दवंश निर्वंश ही रह जाएगा। उसे आप कल ही महारानी के पद पर आसीन कीजिए। आपसे-मुझसे तो क्या, वह गढ़ी चम्पावत नगरी के शंख-तूर्यों से भी अपने लिए 'महारानी' की ध्वनि सुनना चाहती है।"

"पर, यह तुम्हारे प्रति अन्याय होगा, महारानी!" महारानी भद्रा का हाथ पकड़, महाराज बोले—"रानी रुपाली एक प्रखर-यौवना रमणी से अधिक कुछ नहीं। वह महारानी का मान-वरण करने योग्य नहीं।"

"आप गढ़ी चम्पावत नगरी की बात कहते हैं, महाराज?···बहन रुपाली सम्पूर्ण आर्यावर्त्त की चक्रवर्त्तिनी साम्राज्ञी होने की सामर्थ्य और योग्यता रखती है। बिना तेज का सौन्दर्य इतना प्रखर-प्रचण्ड नहीं होता, महाराज!···और अन्याय तो उसे आप महारानी न बनाकर करेंगे। चन्दवंश का नाम चलता रहे, यह उत्तरदायित्व प्रथमतः मुझपर है, कि मैं इस राज-वंश की वरिष्ठा कुल-वधू हूँ। यही मेरे प्रति न्याय भी होगा।"

"लेकिन, तुम काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की राज-परिषद-मान्य

1. गरम नहीं किया हुआ नवनीत।

16

भँवरों, राजाओं और जोगियों की जात

"न्यौली…"

"रानी बा…"

"राजाजी नहीं आए ?"

"नहीं, रानी बा…!"

"झूठी है तू ! मध्यरात्रि हो चली। मेरा भँवरा मेरी बाँहों की परिधि से विलग, इतनी लम्बी अवधि तक नहीं रह सकता।"—रानी रुपाली अधमुँदे नयनों पर सदर्प अँगुलियाँ फेरती बोली—"देख, राजाजी, देली पर मत्था दिए, द्वार खोलने की प्रतीक्षा में होंगे, कि मेरे रूप का रसिया मुँह के बोल खो देता है।"

"भँवरों, राजाओं और जोगियों की जात और होती है, रानी बा ! जिस फूल बैठते हैं, उसी की पँखुड़ियों में प्राण देने का संकल्प करते हैं। जिस रानी की सेज सोते हैं, उसी के नाम का पुरश्चरण रचने की बात कहते हैं। जिस आसन बैठते हैं, उसी में समाधि लेने की बात सोचते हैं। पर, जहाँ एक फूल से दूसरे, एक सेज से दूसरी, एक आसन से दूसरे आसन गए—फिर उसी के हो रहते हैं, रानी बा !" न्योली एक साँस में कह गई।

"तेरे मँगेतर को चढ़ता-रुपया, बढ़ता-वेतन दिलाऊँगी, न्योली !" रानी रुपाली बोली—"शायद, तू ठीक कहती है। पर, मेरे लिए ऐसा न सोचना। मेरा भँवरा, मेरा राजा और मेरा जोगी···सत्य-प्रत्यक्ष की क्या, सपने में भी दूसरे फूल, दूसरी सेज, दूसरे आसन बैठने की बात नहीं सोच सकता !"

"राजाजी आज भद्रादेवी की सेज सोए हैं, रानी बा !" न्योली बोली—कि, या लक्ष्यभेदी अर्जुन के बाण, या न्योली के वचन ही होते हैं।

रानी रुपाली को जैसे नाग डस गया हो—"न्योली !"

"सच कहती हूँ, रानी बा ! आज महारानी भद्रा सेजवती हैं। कल कोई दूसरी होंगी। बिना फूल-फूल जाए भँवरे को, बिना द्वार-द्वार जाए जोगी को और बिना सेज-सेज सोए राजा को कल नहीं पड़ती, रानी बा !"

"झूठी बहुत है, तू !" सहसा पूरी आँखें खोल, अपेक्षया संयत-स्वर में, बोली रानी रुपाली—"वारुणी की बान ढला हुआ, शीतल जल से संतुष्ट नहीं हो सकता, न्योली !"

"वारुणी आँखों से देखकर ही, आँखों तक नहीं पहुँच जाती, रानी बा ! वारुणी नयनों की राह से नहीं, अधरों की राह से नयनों तक पहुँचती है ! और अभी राजा जी ने वारुणी देखी-भर है, रानी बा, उसकी बान नहीं ढले हैं।···" न्योली अर्थ-भरी हँसी हँस दी,

गई, मधु दिखाने-भर से भँवरा वश में नहीं हो जाता।

रानी रुपाली झूला अपने हाथों झुलाती, बोली—"तू सच कहती है, न्यौली, कि नयन-देखे से नहीं, अधर-लगे से वारुणी की बान पड़ती है। और···और···तू यह भी सच कहती थी, कि तेरी गढ़ी चम्पावत नगरी में एक नहीं, बाईस सूर्य तपते हैं !···"

* * *

"राजा जी···"

"नहीं आए, रानी बा !···" न्यौली झूला थामती बोली—"और अब आएँगे। जब दिशाएँ खुलने लगती हैं, तब सेज-सोए पुरुष की आँख लगने की वेला होती है, रानी बा !"

और न्यौली के अधरों पर एक अर्थ-भरी मुस्कान जल-परे की माछी-सी फड़क गई, कि रानी रुपाली की पलक-डोरों में आँसू झूला झूल गए, कि या बन्द कमल-पाँखुरियों पर से विहान-वेला ओस-कन ही झरते थे, या आज रानी रुपाली के आँसू ही झरे हैं···

कि, न्यौली बैन न बोली।

रैन करवट बदल गई।

17
चतुर्थी का चन्द्र
और
चोट खाई नागिन

एहो, कथा-रसिको ! रुपसी रानी रुपाली ने बाईस भाई बफौलों को एक झलक देखा था, कि तभी से चपला-चंचला-चटुलीका चित्त चलायमान हो गया था, कि आज की रात-वेला ऐसी चमारिन-जैसी चल पड़ी—अपने धरम के स्वामी राजा कालीचन्द का एकखण्डी-महल छोड़—बाईस भाई बफौलों के महल को, कि उसका चमार-चित्त चीलों का कलेवा बन जाए !

एहो, कथा-भंवरो !

गगन चतुर्थी-चन्द्र नहीं पर गढ़ी चम्पावत नगरी में, घड़ी रात-बीते एक चतुर्थी-चन्द्र कौन गगन उग आया, कौन दिशा जाएगा ?

रमौलिया (लोकगायक) बताएगा, कि एकखण्डी महल उगता है और

पश्चिम दिशा में, वफौल बन्धुओं के महल को जाता है।

चतुर्थी का चन्द्र, कि ऋतुवती तिरिया क्या करनी करेगी, क्या विधान रचेगी, रमौलिया बेचारा दो गास खाने, दो घूँट पीने वाला क्या जाने, कि तिरिया की गति-दिशा का ज्ञान धरती-धरमराज, गगन-देवराज को नहीं, कथा सुनने वालो !

और उस पर भी रानी रुपाली की गति-दिशा का अनुमान-भान ?' जिसके बैनों से थमी-बयार बहकती, सैनों से सूखी-घास महकती है।

एकखण्डी महल का चाँद कौन ?

हरित बिल्व-पत्र-सी नवोन्मेषिनी, पहली उठी तरंग, पहली उगी किरन; प्रथम बैन, प्रथम सैन-सी रानी रुपाली, कि चरण धर रही है, औरों के कान भँवरों का भनकना, चूड़ियों का खनकना कहाँ ? मगर, दसों दिशाओं के बीस कान खुलते हैं, और दसों दिशाएँ क्या ललक रखती हैं—कि, (विधाता की मुट्ठी का साँप मुट्ठी के भीतर ही मरता है।) काश, हमें बीस कान और दिए होते !

पश्चिम दिशा कौन ?

पूर्व की सौतेली, कि जो लाल पूर्व दिशा ने गोद खिलाए, पालना झुलाए—मर जाए स्वामी पश्चिम दिशा का—एक सन्ध्या, एक भोर निगल जाती है, कि सौत भली नहीं सपने।

पश्चिम दिशा में, किसका रहना ?

पश्चिम दिशा में, महल बाईस भाई वफौलों का, कि बाईस गद्दों, बाईस तकियोंवाली एक सेज सोए हैं, कि जैसे बाईस फल एक डार फले हों, कि बाईस मोती एक साँचे ढले हों।

*   *   *

रानी रुपाली के चरण देहरी, कि खनक चूड़ियाँ, झनक-झाँझर और वफौल बंधुओं की टूट गई, कि या आँखें भोर की बयार लगने से, या

पायल की झंकार सुनने से ही उपजती हैं।

वफौलों की आँखें उघड़ीं।

बिना रन्ध्रों की बाँसुरी बन गए, कि बाईस दीपक हमारे सिरहाने आकर जला गए थे, कि शयन-कक्ष हमारा गगन नहीं, यह पूनम का चाँद कहाँ उग आया? बिना स्वप्न की नींद भी आती है, यह तो सुना था, पर आज हम बिना नींद का स्वप्न देख रहे हैं!

"वफौल हो…" रानी रुपाली बोली, कि वह पहले जनम में शारदा-हाथ की वीणा रही थी, या न-जाने नारद-हाथ की, कि वह किस राग बजेगी, किस तान झनकेगी, कि क्या मनोरथ बाँधेगी, क्या वचन बोलेगी, विधाता ही जाने।

"वफौल हो…" दूसरी बार जब रानी रुपाली भँवर-न्योतार[1] वचन बोली, तो वफौलों ने सिरहाने-धरे जल-कलश में अँगुलियाँ डुबोईं, पलक-पाटलों से लगाईं—कि, सपने देखते हों, जाग जाएँ। प्रत्यक्ष देख रहे हों, तो पूछ पाएँ, कि कौन देश की माटी, कौन वंश की परिपाटी धन्य करती हो, कि गगन-चन्द्र फीका, मुख-चन्द्र नीका है।

"वफौल हो!…"

'कौन हो तुम सूर्य-कन्या-सी, भली हो? और क्यों इस रात्रि-वेला हमारे कक्ष चली आई हो, कि हम वफौलों की नींद मक्खी का भनकना, पाँखी का कुनकना नहीं सह पाती।"

"वफौल हो! सूर्य-कन्या ही नहीं, 'छोटी गढ़ी का एक सूर्य' कहलाती थी मैं, कि मेरे नाम से छोटी गढ़ी में दो सूर्य तपते थे, एक गगन-मढ़ी में, एक छोटी गढ़ी में!" रानी रुपाली बोली, "लेकिन…"

वफौलों ने 'लेकिन' के प्रति अपनी ओर से कोई जिज्ञासा प्रकट नहीं की, कि रानी रुपाली नयन-धनु टंकराती, मदन-शर फेंकती बोली, "लेकिन, गढ़ी चम्पावत नगरी में, न्योली मेरी सखी सच कहती थी, एक

1. भँवरों को न्योतने वाले।

नहीं—दो नहीं—बाईस-बाईस सूर्य तपते हैं !" और वह हँस पड़ी, कि या नशे में उन्मत्त शराबी के कांपते हाथों के स्पर्श से शराब की प्याली—और वह भी लबालब भरी—ही छलकती है, कि या बाँके-बैन बोलते, कटीले-सैन करते रानी रुपाली के अधरों ही हँसी फूटती है।

एहो, कथा के सुनने वालो !

रानी रुपाली के बैन-सैनों का स्वामी बिना सींगों का बैल, बिना सूंड का हाथी बन जाए, कि बाईस बफौलों की वाणी बिना बोल हो गई है, हिया डोल गया है, कि पूछनी पूछ नहीं पाते हैं, कहनी कह नहीं पाते हैं।

"सुनो, बफौल हो !" रानी रुपाली चालिस-को-चौवालिस करती बोली—"आपकी काली कुमाऊँ में एक गीत कहते हैं, 'हैंस्यालू का गुना, हाई रे, त्वीमें माया के पड़ी—पड़िगे अनाधुना[1] ।'...ऐसी माया मेरी आप बाईस भाई बफौलों की सेज सो गई है, कि मैं गढ़ी चम्पावत के राजाजी कालीचन्दकी सेज छोड़, आपकी सेज सोने चली आई हूँ। सूर्य-कन्या कहा था आपने मुझे न ? मेरे तेज का वरण गढ़ी के बाईस सूर्य ही कर सकते हैं। दिए का पतंगा राजा कालीचन्द, अपने पंख जला लेगा, मेरी ज्योति धुँधली कर देगा।"

तो, ये ही गढ़ी चम्पावत नगरी की नई रानी देवी रुपाली हैं ? दीवानजी कहते थे, "जैसे बिना पंख का पाँखी घोंसले-का-घोंसले में ही रह जाता है, ऐसे राजा कालीचन्द नई डोटियाली रानी रुपाली के एकखण्डी-महल में रह गए हैं, कि उन्हें राज-काज की सुध कहाँ ? साँझ-सूर्य का ढलना, भोर-सूर्य का उगना नहीं सूझता है।"

सच ही, राज-रानी रुपाली का रूप इतना ज्वलन्त है, कि इनकी रूप-परिधि से परे विश्वामित्र न जा पाते, कि एक मेनका के सैन-बैनों में जुग-जुग की तपस्या टूट गई। हमारी राजरानी रुपाली सौ मेनकाएँ एक,

---

1. ('हैंस्यालु का गुना' एक प्रतीकात्मक तुक-छन्द है।...) हाय, प्रिय [illegible] प्यार क्या हो गया, असीम (अन्धाधुन्ध) हो गया है।...

सौ मेनकाएँ एक नयन रखती हैं, कि हम धैर्य-धरम के धनी वफौलों की वाणी भी चोर-सी काँपती, जार-सी[1] जरजराती है।··· हमारे राजा-महाराज कालीचन्द तो दीपक को पतिंग, फूल को भँवर हैं।

धरम रह जाए धरती-माटी का, सत रह जाए वंश-परिपाटी का, कि पुण्य-सूर्य डूबे नहीं, पाप-चन्द्र उगे नहीं। बाईस भाई वफौल बोले—"प्रणाम लो हो, राजमाता !·· कानों से सुना था, आँखों से देख, धन्य हो गए हैं, कि एक आपसे हमारी गढ़ी चम्पावत नगरी का सिंहासन चार दिशा नामधारी रहेगा, कि गगन-देवराज भी हमारे महाराज की दाल-रोटी में नियत रखनेवाला बनेगा !···कि, ऐसी रानी जो उसके इन्द्र-लोक में होती, तो वह इन्द्राणी को द्वार का पहरा भरने, शीश को चँवर झुलानेवाली बनाता, कि एक दासी का वेतन बच जाता।···" और वफौलों ने हाथ जोड़ दिए, कि उनका हँसना, गोदी के बालक का किलकना एक होता है।

रानी रुपाली की हँसी को चींटियाँ लग जाएँ, कि जी की शराब तिब्बती भोटिए ढालते हैं और भ्याँकुरी-स्याँकुरी पातलों (सघन वनांचलों) की जड़ी-बूटियों की शराब हूण लोग—पर, नैन-वारुणी, सैन-शराब एक रानी रुपाली ही ढालती है। हँसकर बोली, "गगन-देवराज एक वज्र के स्वामी कहलाते हैं, वफौल हो—कि, आपसे राजाजी बाईस वज्रों के स्वामी कहलाते हैं !··· एक वज्र के स्वामी इन्द्र की रानी शची इन्द्राणी बताई गई है, कि बाईस वज्रों के कथुवा[2] स्वामी की महारानी भद्रा को सेज-सोई देख आई हूँ।···मैं बनूंगी, तो बाईस वज्रों की एक बिजली बनूंगी !···"

वफौल मुँह ताकते रह गए।

* * *

1. चरित्रहीन। 2. तथाकथित।

एहो, कथा के लाड़लो !

तुम्हारे घर के आँगन में, दूधमुखी-बालक रेशमी-डोर का पालना झूलता और तुम्हारे गाँव के सरोवर में सूर्यमुखी-कमल फूलता रहे, कि चंचला, चपला, चटुली रानी डोटियाली रुपाली के द्वार का पहरुवा सो जाए, गोठ का बैल खो जाए, कि हट पापिनी, चार हाथ दूर, बारह पत्थर बाहर जा, कि क्या दाएँ सैन किए, क्या बाएँ वचन बोली—"सुनो हो, मेरे प्यारे बाईस भाई बफौलो ! कली भँवर के पास, ज्योति शलभ के पास नहीं जाती, कि एक आप बाईस भाई बफौलों के प्यार में बावली मैं हुई हूँ, कि नारी के तीन कर्म भुला आपके महल चली आई हूँ। आप पूछोगे, बफौल हो, कि नारी के तीन कर्म कौन ? कर्म तीन, कि एक उनमें से पुरुष के पीछे बोलना। पुरुष से पीछे खाना, दूसरा—कि, तीसरा पुरुष के पीछे चलना।···पर, मैं क्या करूँ, कि मेरे नयनों को लाज बैरी बन गई है, कि आपके सामने पहले बोल बोल रही हूँ। घूँघट मेरा किस बयार उड़ गया है, शरम मेरी किस धार बह गई है, मैं न जानूँ। जानें ब्रह्मा, कि न एक वन में बाईस देवदारों-जैसे आप बाईस भाई बफौलों की रचना की होती और न मैं एक लता बनती, न बाईस वृक्षों का आधार खोजती, कि न मेरे मन यह ललक जागती, कि बाईस दीपकों की एक बाती बनकर जलूँगी, बाईस वृक्षों से एक लता बन लिपटूँगी !···"

बफौल धनी धरम के, बफौल मानी सत् के—पाप के वचन सुने, कान अँगुली धरी, जीभ दाँतों दबाई, कि पाप के वचन कहीं धरती-माटी को बंजर, पितर-परिपाटी को कलंकित नहीं कर जाएँ।

हाथ जोड़ लाए, सिर झुका लाए, "सुनो हो, हमारी राजमाता ! माँ हो हमारी धरमकी, दूध-धार छोड़, रक्त-धार क्यों देती हो, कि पाप के वचन कान सुनते हैं, सिर झुकते हैं : ऐसे अन्यायी वचनों से धरती से धरम उठ जाता है, गगन बादल नहीं गिरते हैं, माटी अँकुर नहीं फूटती है। जनम-माता एक हमारी बफौलीकोट में रहती हैं, कि धर्मपत्नी एक लली दूधकेला भी हमारी बफौलीकोट में रहती है, कि काली कुमाऊँ,

पाजों पछाऊँ में और जो चूड़ियाँ खनकती हैं, सो हमारी बहनों की, जो झाँझरें झनकती हैं, सो हमारी माताओं की !··· कि, बहनों के हाथ चूड़ियाँ रहेंगी, हम अपने हाथ राखी बँधवाएँगे; माताओं के चरन छुएँगे, आशीर्वाद लेंगे··· सो, सुनो हो राजमाता, लाज आपकी रह जाए, धरम हमारा न डिगे—आज्ञा दो, चाकरी बजा लाएँगे। पर, पापी वचन न बोलो, कि ऐसे वचनों से नारी का सत्, पुरुष का धरम कलंकित होता है।"

एहो, जिस वज्र ने गिरना हो, डोटीगढ़ी में गिरे, कि जहाँ की रानी रुपाली उलटी-धार बहती है, उलटी-राह चलती है।

समझाने से गोदी का बालक रोना, खाट-पड़ा बुड्ढा कुढ़ना और कमजात घोड़ा अड़ना छोड़ देता है, पर रानी रुपाली की डोटीगढ़ी में दूब हरी, गोद भरी न हो, कि शीतल जल डाला और भभक उठी—ऐसी सत्यानाशिनी आग और कहीं नहीं देखी। 'माँ' कहके, धरम के धनी वफीलों ने शीश झुकाए, पर पातर बन गई, कि सिर पर आँचल, वक्ष पर चोली न रखी। ऐसी तिरिया नहीं देखी, कि आज देखी, तो कान पकड़ते हैं, कि और न देखनी पड़े, कि ऐसी पापिनी तिरिया का मुँह देखने से 'गौ का कसाई, माँ का हरजाई' बनने का पातक लगता है।

शुद्धि, शुद्धि !

राम, राम, शिव, शिव !!

देवशुद्धि, पितरशुद्धि !!!

"सुनो हो, वफील, मेरे प्यारे !···" रानी रुपाली में मेनका-रम्भा ने अवतार लिया, कि गोल्ल-गंगनाथ तो और नारियों में भी अवतार लेते थे।[1] लाज ढँकनी केले के पातों से भी ढँक ली जाती है, कि रानी

---

1. गोल्ल-गंगनाथ लोक-देवताओं का जिन पुरुष या नारी-विशेषों की देह में अवतार होता है, उन्हें लोक-भाषा में 'डँगरिया' कहते हैं। सम्भव है, पहले इन लोक-देवताओं ने डँगरियों (ग्वालों) के ही शरीर में अवतार लिया हो !

रुपाली ने अपना रेशम की अँगिया, मखमल की घघिया से ढँका तन निर्वसन-सा कर लिया, कि उसकी विजन-वल्लरी-सी-देह-यष्टि का क्या कहना—कि, अंग-अंग का लावण्य और, लोच और, कि मयूर ने अपने पंख न देखे, आप ही नोंच चोंच से लगाता। फूल ने अपना पराग नहीं देखा, पंखुड़ियों से निगल जाता, कि जहाँ फूल भँवरे हो जाते, तो वहाँ भँवरे क्या मुँह ले जाते ?

गंग-धार देखी, महाकाल शिव को राजा भगीरथ की तपस्या का ध्यान न रहा, कि तिरिया के नाम की तितपाती[1] भी बुरी होती है, कि जिसे बकरा खोज-खोज खाता है, सिर धुनता रह जाता है !

पर, धन्य-धन्य कहता हूँ, अपने बाईस भाई बफौलों को, कि उनके सत्-धरम की पावन-कथा द्वार-द्वार गाऊँगा, उनका जस बारह कोस फैलाऊँगा, अपना बारह पेटों का कुटुम्ब पालूँगा[2] ।···ऋषि-मुनियों को भारी रानी रुपाली ठाड़ी रही। अंगार पचा गए, विष पी गए, कि सत् रह जाए बफौलीकोट की धरती-पार्वती का, कि उसकी कोख कलंकित, दूध-धार अपवित्र न हो।

रुपाली रानी नागिन बनी, पास सरक आई—"सुनो हो, बफौल मेरे प्यारे !···बात आपने कही, कि एक ऋषि विश्वामित्रों की कथा सुनी थी—आज बाईस विश्वामित्रों को देख रही हूँ !"···और खिलखिलाकर, अट्टहास कर उठी, कि जैसे झरण-चट्टान[3] से प्रचण्ड जल-धार हर-हर करती गिर पड़ी हो।

बोली, "आई को ठुकराके, गई के नाम पर नयन गीले, चरन ढीले

---

1. एक तीती घास, जिसे बकरा खाता है, खोज-खोज कर, पर पचा नहीं पाता।

2. कुमाऊँ में रमौलिया जिस घर भी कथा कहता है, उस घर का स्वामी उसे भोजन-वस्त्र और रुपये देता है।

3. जहाँ से झरने के रूप में धार नीचे गिरती है।

करना ठीक नहीं, बफौल मेरे प्यारे ! वारुणी और तरुणी में इतना ही अन्तर होता है, कि एक आँखों के आगे आने पर बावला बनाती है, दूसरी आँखों से दूर चली जाने पर।

"आज मैं ऋतुदान माँगने आई हूँ, कि चौथा दिवस था, चौथी रैन है। चतुर्थी की चाँदनी को ठुकराने वाला पर्वत अँधेरा रह जाता है, कि उसमें कभी फूल नहीं फूलते। और चौथे दिवस की ऋतुवती के प्यार को जो पुरुष ठुकरा देता है, उसे सात जनमों तक नारी के नाम की लकड़ी भी नसीब नहीं होती, कि ऋतुवती के प्रणय को ठुकराना, भूखी गाय के मुँह से हरी घास छीनने के बराबर है !"

बफौल विचलित नहीं हुए, "सुनो हो, राजमाता ! पहली बात, कि हम विश्वामित्र नहीं हैं, कि एक लली दूधकेला पूनम की चाँदनी-सी बाईस पर्वत उजाला करती है, कि धरती-धरमराज, गगन-देवराज के घर एक रात की, लेकिन हमारी बफौलीकोट में बाईस रातों की पूनम होती है। और हमारे मन अँधेरा, तन कलुष नहीं रहता। दूसरी बात—गणेश-चतुर्थी का चन्द्र देखने से कलंक-भागी होना पड़ता है, यह सुना था, पर आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं, कि तुम चतुर्थी का चन्द्र बनके हमारी धरती-माटी, वंश-परिपाटी का नाम स्याही से लिखवाने पर तुली हो, राजमाता ! तीसरी बात—आपके सिर पर मयूर-पंख के मुकुट, सुनासार[1] के छत्र-जैसे महाराज कालीचन्द हैं, कि आप बिना आधार की लता, बिना दीपक की बाती नहीं हैं ! चौथी बात—गाय को अपवित्र वस्तु खाते नहीं देखा, कि उसके मुंह की हरी घास नहीं छीनते।...जो गाय मुँह-आगे की हरी घास छोड़के पराये खेत में मुँह डालने दौड़ती है; माता कहलाती है, पाप सिरजती है—उसे कसाई को सौंपने से भी पाप नहीं हैं। सो, हे राजमाता ! महाराज कालीचन्द के कक्ष जाओ, कि जब चन्द-वंश का धागा आगे बढ़ेगा, हम बाईस भाई बफौल गगन-दुन्दुभि, मगन नगाड़े बजाएँगे।"

---

1. सोने से बना हुआ।

और वफौलों ने सिर झुका लिए, कि चन्दन के काठ को नागिन की फुंकार नहीं व्यापती है, कि समुद्र मगर की हुँकार से अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता है।

पर, ऐ हो, कथा के सुनने वालो!

···गुरु-पितरों ने लाख की यह बात आपके हिस्से भी लगाई ही होगी, कि जो वो कह गए, कि दूध से साँप का जहर बढ़ता है, घी से आग की भूख बढ़ती है, झूठ नहीं कह गए, कि पितरों की बात, आँवले का स्वाद बिरले ही समझ पाते हैं!

चद्रुली रानी डोटियाली को ठण्डी छाँव, दानी गाँव न मिले। नकटे की नाक में पेड़ उगा, काटने को कहा, तो छाया में बैठने का आसरा बताने लगा।···कि, बिना विष-दन्त टूटे नागिन वश में नहीं होती।

वचन उसके सात हाथ गहरे गड्ढे गाढ़ आऊँगा, सात परतें मिट्टी दबाऊँगा, सात हार (पंक्ति) पत्थरों की दीवार चुन दूँगा, कि ऐसा न करने से उसके पापी वचन भाँग-धतूरे के वृक्षों-से पनपेंगे और अटारी-अटारी का दिया बुझाएँगे, पिटारी-पिटारी का वैभव चाट जाएँगे।

पापिनी चपला-चंचला क्या बोली, "दुधार गाय की लात सह लेनी पड़ती है, सो वफौल मेरे प्यारे, आप लोगों के वचन भी सह लेती हूँ, कि तुम्हारे कण्ठों को बाईस मोतियों का हार बन जाऊँगी, कि जो गले हाथ लगाएगा, वही अपने गले पाएगा। सुनो हो, वफौल मेरे प्यारे! कली-कली, लली-लली[1] में अन्तर होता है। एक अपनी लली दूधकेला का मुँह देख आए हो, एक मेरे पाँवों की तलियाँ देख लेना। एक वफौलीकोट की अपनी सेज सो आए होगे, एक मेरी सेज सोकर देखना, कि वन-वन के वृक्ष एक नहीं, वृक्ष-वृक्ष के फल एक नहीं और फल-फल का स्वाद एक नहीं।···

"मेरा प्यार न ठुकराओ, वफौल मेरे प्यारे!···कि, तुम्हारे नाम के बाईस दिये अपने महल में जलाऊँगी, तो बाती उनमें एक रहेगी। तुम्हारे

1. कन्या।

नाम का एक घाघरा पहनूंगी, पर उसके पाट (घेरे) बाईस होंगे। एक चोली पहनूंगी, कि सात रँग इन्द्र-धनुष के भी होते हैं, मेरी चोली में बाईस रँग होंगे।...तुम्हारे नाम पर, सिर पर बाईस सिन्दूर-रेखाएँ भरूँगी। बाईस लटियाँ करूँगी, वाईस फुन्ने लगाऊँगी, कि लटी-लटी का गुंथन, फुन्ने-फुन्ने का गुम्फन और होगा। और, ऐसी लटियों को वाईस कंघियाँ लगाऊँगी, कि सात-जात के तेल आपकी गढ़ी चम्पावत नगरी में होते हैं, पन्द्रह जात के अपनी डोटीगढ़ी से मँगाऊँगी। रानी रुपाली का वचन खाली नहीं जाएगा, बफौल मेरे प्यारे! कि, बाँसुरी के सात रंध्रों से, सितार के सात तारों से सात-सात अलग-अलग स्वर निकलते हैं, मगर मेरे कण्ठ की बाईस पुकारों से एक ही स्वर निकलेगा—'वफौल मेरे प्यारे, बफौल मेरे स्वामी!' बाईस धातुओं के बाईस पिंजरे तैयार कराऊँगी, और उनमें चम्पावत के रनकुरी-मनकुरी, हिमालय के स्याँकुरी-भ्याँकुरी वनों के बाईस जात के तोते पालूंगी। पर, मेरे बाईस पिंजरों के बाईस तोते भी एक ही बोल रटेंगे—'वफौल मेरे प्यारे, वफौल मेरे स्वामी!' सो, मेरे मनके स्वामी! आज मुझ अकेली को बाईस रागिनियों की एक वीणा, बाईस स्वरों की एक बाँसुरी बनने दो, कि मैं बाईस सेजों की एक सोने वाली, सेज फूल विछाऊँगी, देह सुवास फैला जाऊँगी।..."

*　　　*　　　*

बजते-बजते वीणा की झंकार नहीं थमती,

बहते-बहते पनार की धार नहीं थमती,

और कहते-कहते रानी रुपाली की वात नहीं थमती, कि उसके इष्टों को नैवेद्य, पितरों को पिण्ड नहीं मिले।

पर्वत के ऊँचे शिखर हिलते हैं, खुद गिरते हैं। पर, जब तरुणी त्रिया के सुघड़ कपोल कपोत-पंखों की तरह फड़फड़ाते हैं, स्तन फली-डार-से झूलते हैं, पुरुषों का पतन होता है।

रानी रुपाली नागिन-सी बलखाती, विष-वमन करती रही—"बफौल मेरे प्यारे, अपने महाराज कालीचन्द की जोट[1] किसी और तिरिया से बाँधना, कि आकाश से गंगा गिरी, तो उसे किसी हूण ने नहीं महाकाल ने धारण किया था, कि आई तो वह राजा भगीरथ के लिए थी, पर एक साल तक महाकाल ने घर धर लिया—कि, जब देवों के देव महादेव को इसका पातक नहीं लगा, तो राजाजी कालीचन्द के लिए आई मैं, मुझे अपनी सेजा-सुलाने से आपको कैसे पाप लग सकता है ? बफौल मेरे स्वामी, कालीचन्द अन-बँटा रस्सा, अन-बना बकरा है। मैं फूल सहस्र-पाँखुरी मन-भर पराग—राजाजी बिना गुन-गुन के भँवरे हैं। मैं ज्योतिर्वान अग्नि-शिखा हूँ, राजाजी गीली लकड़ी हैं, कि धुआँ छोड़ते हैं, आग नहीं पकड़ते।·· ऐसे राजाजी कालीचन्द के साथ मेरी जोट कैसे निभ सकती है ? सो, आज आप मुझे अपनी सेज सुलाएँ, बफौल मेरे स्वामी, कि एक बीज से उगे वृक्ष को बाईस फल लगते होंगे, मैं बाईस बीजों से एक फल तैयार करूँगी। वह बाईस सूर्यों का एक सूर्य, बाईस वज्रों का एक वज्र कहलाएगा। सुनो हो, बफौल मेरे प्यारे ! द्वारिका-नगरी में कृष्ण ग्वाले की सोलह हजार रानियाँ थी, कि उन सोलह हजार रानियों के नाम पर वह अवतारी भगवान् कहलाया। गढ़ी चम्पावत नगरी में आप बाईस भाई बफौल मेरी सेज के सोने वाले बनोगे, कि सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ में एक अवतार मेरा भी कहलाएगा !···"

"हट पापिनी ! चार हाथ दूर, बारह पत्थर बाहर जा !" बफौल, मेरी कथा के स्वामी, कमर से कटार निकाल बोले, "इतने बोल बोल गई है, कान अपने नहीं रह गए हैं, और एक वचन बोलेगी, या गति सूर्पनखा की हुई थी, या तेरी होगी। दूध-धार देनी थी, रक्त-धार देने आई है, कि ऐसी नारी-गाई का कसाई खुद बनने में भी पाप नहीं।···"

और बाईस कटारें आगे बढ़ आईं, कि डोटियाली रानी रुपाली गात

1. जोड़ी।

का ढँकना, केश का सँभालना बिसर गई और पापिनी यह गई, वह गई, कि बफौलों के कक्ष से एक साँस में बाहर आई।

और, आँगन में बाईस लोट लेकर, बाईस बार उल्टी हथेली से माथा ठोक गई—

"हूँ मैं डोटीगढ़ी की रुपाली—तुम बाईस भाई बफौलों का वंश-नाश, बीज-नाश कराके ही अन्न-दाना, पानी-घूंट ग्रहण करूँगी ! नहीं तो, सब जलती चिता कूद मरते थे, मैं ठण्डी-चिता आसन लगा मरूँगी !"

* * *

ऐहो, कथा के सुनने वालो !

बफौल मेरी कथा के धनी बिसर गए, पर तुम न बिसरना, कि या तो नागिन को चोट ही नहीं मारनी, या मारनी, तो अधमरी कर नहीं छोड़नी, कि चोट खाई नागिन और प्रताड़िता तिरिया—बदला लेना, इनमें से कोई भी नहीं भूलता !



18

चपला-चंचला-चट्ठुली का तिरिया-चरित्र

"यों वस्त्र हीन, विना जलकी मीन-सी छटपटाती इस अधराती कहाँ से लौटी हो, महारानी ?" द्वार खड़े-के-खड़े महाराज कालीचन्द ने प्रश्न किया, कि रानी रुपाली का देहरी-भीतर का चरण भीतर, वाहर का वाहर ही रह गया।

महाराज वोले, "मैं न आता तुम्हारे महल में; पर बड़ी महारानी ने अपनी शपथ देके भेज दिया, कि तुम ऋतुवती हो···और मैं चला आया, कि शायद, तुमसे ही चन्द-वंश ने चलना है।····कबसे मैं प्रतीक्षाकुल खड़ा हूँ यहाँ। न्यौली से पूछा, न बता सकी। मँझरात घर छोड़, बाहर गई नारी पुरुष की प्रतिष्ठा-नौका मँझधार डुबोती है, रानी ! तुम कहाँ अपनी

डोटीगढ़ीके मुँहपर कालिख पोतके आ रही हो ?···सुनो, रानी रुपाली ! सच, सच कहना ! राजा कालीचन्द रूप की आरती कर सकता है, पर चरित्र-हीनता की होली भी जला सकता है ।"

और महाराज कालीचन्द की आँखोंमें खून उतर आया, खड्गधारी बन गए—"सच, सच बोलना, रानी ! नहीं तो चीर-चार, फाड़-पाँच करूँगा ।"

"कापुरुषों से और हो भी क्या सकता है, महाराज !"—रानी रुपाली बिजली-सी कड़क उठी, कि महाराज कालीचन्द हाथ को बिना खड्गका अनुभव करने लगे ।

"मुझे चीर-चार, फाड़-पाँच करनेमें आपको चार क्षण नहीं लगेंगे, पाँच पलक नहीं गिरेंगे—क्योंकि, मैं आपकी पत्नी हूँ ! और कहा है, कापुरुष और किसीसे नहीं सही, घर की जोरू से तो जोर आजमा सकता है !···" रानी रुपाली के होंठ तिरछे हो गए—"थू है, राजाजी ! तुम्हारे पुरुषत्व, तुम्हारे खड्ग और तुम्हारी प्रतिष्ठा पर, कि जब तक अपनी डोटीगढ़ी में थी, पुरुष के नाम के भँवर-पाँखी मेरा स्पर्श नहीं कर पाए । पर, आज कापुरुष राजा की गढ़ी चम्पावत नगरी में मेरी लाज चाकरों-दरबानों के हाथ मिट्टी में मिल गई, कि हाय, राम-राम ! हाय, शिव-शिव ! अब मैं कौन गंगा में डूब, कौन चिता में जल मरूँ, कि आज अन्यायी कापुरुष राजा की गढ़ी चम्पावत नगरी में, मैं बिना मणि का साँप, बिना ज्योति की बाती बन गई हूँ ! सतीत्व मेरा, अत्याचारी वानरों को अमृत फल, चोर बिल्लियों को दूध-कटोरा बन गया ।···हाय रे राम-राम ! हाय रे, शिव-शिव !"

रानी रुपाली दीवार से माथा पटकने, छल-छल आँसू गिराने लगी ; आकाश की ओर हाथों को उठा, धरती थाप मारने लगी—"छोड़ दो, महाराज ! मेरी राह, कि मैं आज महल के अन्दर ही चन्दन-चिता रचा मरूँगी, कि कसाइयों के हाथ की गाय बन गई थी, अब मैं पापिनी किसे अपना मुँह दिखाऊँगी ? धिक्कार है, इस गढ़ी चम्पावत नगरी को !

धिक्कार है, चन्दवंश को !!···और धिक्कार है, महाराज, आपको, कि आपके रहते मेरा सतीत्व लूट लिया गया, और मैं कसाइयों की गाय बनी बिलखती रह गई, कि जहाँ मेरे आँसू गिरे हैं—हूँ मैं पतिव्रता नारी, एक आपके नाम की सेज सोने वाली !— वहाँ राजा इन्द्र बिना मेघ के वज्र गिराएँगे, कि वह धरती ही धँस जाएगी !"

महाराज कालीचन्द को धक्का मारकर उधर करती, दाँतों को पीसती, रानी रुपाली शेरनी-सी बिफर बोली—"बड़े कापुरुष हो, राजाजी, कि थू है तुम्हारे खड्ग को, मुझे दिखाते हो ? पर, तुम्हारी पतिव्रता रानी की पवित्रता को जिन्होंने जूठन बनाकर रख दिया, उन पापियों के लिए तुम्हारे खड्ग की धार कुन्द हो गई ?···इससे अच्छा था, मेरे पिताजी मुझे किसी मछुए से ब्याह देते, तो वह उस नदी में मीन नहीं रहने देता, जिसका पानी मेरी मणि के चोर पीते होते।···"

महाराज कालीचन्द करनी बिसर गए, कहनी भूल गए, कि पुरुष के हृदय को स्त्री के वचन-बाण जब बेधते हैं, तब बिना घाव की पीर, बिना आग की जलन होती है।

खिसियाए-स्वर में, महाराज कालीचन्द बोले, "और वचन न बोलो, और न बाण मारो, रानी मेरी मनकी प्यारी ! मैं नहीं जानता था, कि तुम्हारे साथ 'बिल्ली ने दबोचा चूहे को' वाली हुई है। सुनो, मैं भी छत्रधारी, खड्गधारी राजा कालीचन्द हूँ, तो जिन्होंने तुम्हारे रूप को, सतीत्व को राहु-केतु लगाए हैं, उन्हें कसाइयों से कटवाऊँगा, दुकानों में टँकवाऊँगा। बकरी का मांस यहाँ जिस भाव बिकता है, उससे आधे दामों में, तुम्हारे रूप-यौवन के वैरियों का मांस कुत्ते-चीलों में बिकवाऊँगा ! सुनो हो, रानी रुपाली ! तुम मेरी, गढ़ी चम्पावत नगरी, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की महारानी बनने जा रही हो कल। व्यर्थ मुझ पर कोप न करो, हृदय न बेधो, कलेजा न चीरो, कि जिसने तुम पर बुरी दृष्टि, पापी अँगुली उठाई है, उनकी बोटी चीलों से नुचवाऊँगा हड्डी कुत्तों से चबवाऊँगा ! कोप शान्त करो, वैरियों के नाम बताओ,

के उन नामों को धरते समय ब्राह्मण की, और उन पापियों की कपाल-पाती लिखते समय विधाता की मति भ्रष्ट हो गई होगी !…सुनो, मेरी महारानी, तुम्हें चिता जलने, डूब मरने की क्या पड़ी है ? कसाई के बलात् छूने से, गौ अपवित्र नहीं होती। चोरी से गो-मांस देने से, ब्राह्मण पतित नहीं हो जाता ! तुम्हारे रूप के तस्करों को मैं कल बीच-बजार बिना अस्थि-चर्म का करवा दूंगा। तुम्हारे कलंक का साक्षी भँवर-पतिंगा भी मेरी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ में नहीं रह पाएगा ! फिर, तुम्हें भय क्यों ?"

रानी रुपाली आँसू भर लाई, हाथ जोड़ लाई, "महाराज मेरे, मैं तुम्हारे चरण की फूल-पाती, अटारी की दीप-बाती बनूंगी, कि जो सपने में भी पराए पुरुष का स्मरण-स्पर्श किया हो, मेरा यह शरीर चील-कौओं को प्यारा हो जाए !… पर, महाराज ! बुद्धि को बारह हाथ पीछे न छोड़ो। यदि उन पापियों (हाय, राम-राम ! हाय शिव-शिव ! उनका नाम क्या आता है, मुँह में अंगार भरे लगते हैं,) को बीच बाजार में आपने मरवाया, तो क्या बात न फैलेगी महाराज ? [illegible] सुवास कक्ष और नैवेद्य की मिठास मुंह तक ही रहती है, पर [illegible] की बात तो बयार-सँग डोलती, पनार-सँग बहती फिरती है, कि [illegible] एक, अपजस अठारह कोस' कह रखा है !…मेरे [illegible] रात-ही-रात में वंश-बीज नाश होना चाहिए [illegible] ग्रहण करूँगी, नहीं तो, मेरे जिये [illegible] महारानी बने कोई बिल्ली, गद्दी पर [illegible] महाराज ! आपकी ही कुमाऊँ [illegible] जै नसणा ऐगे, कवा भैंजो रा [illegible] हैं, 'बिन पाक्ये कोदा की [illegible]

1. अपना अन्त [illegible]

जान्याई, तिरिया नै छुटन्याई ।' "[1]

"बात तुम इष्ट-मान्य, पितर-मान्य कहती हो, महारानी !" महाराज कालीचन्द प्यार करते बोले, "अब तुम नाम दुश्मनों के यमराज के यहाँ भेजो । उजाला होने तक, उनके नाम की राख भी नहीं रहेगी ।"

"सुनो हो, महाराज !" रानी रुपाली स्वर साधकर बोली, "वैरी मेरी पावनता और आपकी प्रतिष्ठा के और कोई नहीं—आपके चाकर बाईस भाई बफौल अन्यायी हैं, कि गाय मैं बाईस कसाइयों की बन गई ।"

"बाईस भाई बफौल—गढ़ी चम्पावत की आन-बान के बाईस प्रहरी बफौल ?" महाराज को पालतू कुत्ता काट गया—"उन्होंने तो आज तक कभी राज-रानियों के नाम की दासियों पर भी कुदृष्टि नहीं डाली, रानी···महरानी ! और कोई होंगे, अपनी माँ की दूध-धार, धरती की अन्न-बाल कलंकित करने वाले, रानी···बफौल मेरे वीर नहीं होंगे । और कोई होंगे, बफौल नहीं होंगे, महारानी ! अँधेरी रात में तुम्हारे नयन धोखा खा गए हैं, कि गाय पर दूध की चोरी का इलजाम आज तुमसे लग रहा है !"

महाराज कालीचन्द अपनी कनपटियाँ हथेलियों से दाबे, लुटे यात्री-से बैठ गए, "और कोई पुरुष के नाम का भँवरा भी हो सकता है, रानी, महारानी मेरी ! ···पर, बफौल मेरे वीर नहीं हो सकते, कि उनके लिए जनम-माता एक बफौलीकोट में है, हजार धरम-माताएँ काली कुमाऊँ में हैं, कि तुमको डँसने वाले नाग कोई और, लगने वाले राहु-केतु कोई और होंगे । फूल तोड़ने का इलजाम पराग, सितार तोड़ने का इलजाम राग पर मत लगाओ, रानी···महारानी रुपाली !"

बिसरी-बान, बाएँ वचन लौटा वाई रानी रुपाली—"बलवान वैरी

---

1. चन्द्रमा को लगा ग्रहण छूट जाता है, पर नारी को लगा नहीं छूटता ।

के चरण छू लेना, अबला नारी को जूती दिखाना, कायर पुरुषों का यही तो स्वभाव होता है, राजाजी, कि जूती मारने वाले को जाँलहाथ[1] करते हैं, जाँल हाथ करने वाले को जूती दिखाते हैं !···एहो, राजाजी ! कटोरे का दूध घरवाले ढड़ुवे[2] पी गए, पड़ौस की बिल्लियों पर कैसे इलजाम लगाऊँ ? बगीचे की फूल-पाती घरवाले बोकिये[3] नष्ट कर गए, वन के वानरों पर किस मुंह से आरोप लगाऊँ ?···केवल इसलिए, कि पापी बफौलों के नाम से ही आपका नाड़ा ढीला, गात सुरसुरा होने लगता है ? ये लो हो, राजाजी ! पहन मेरा घाघरा, पहन मेरी चोली-चूड़ियाँ, अपने एकखण्डी महल बैठे रहो, कि ऐसे कायर राजा का मुंह देखने से सूरज उजाला देना छोड़ देगा, बादल बिना बरसे लौट जाएंगे !···"

जैसे बदली एक बार जोर-जोर से गरजती है, फिर मायके से ससुराल को जाती बहू-बेटी-सी रो पड़ती है—एक बार गरज के, रानी रुपाली जार-जार रोने लगी—"महाराज मेरे, आपके चरण की माटी, आपके प्यार की पाती बन जाऊँ मैं।···मैंने बफौल पापियों से कहा था, 'बफौल वीरो, वय से छोटी हूँ, सो बहन मान लो। आन-मान से बड़ी हूँ, राजमाता मान लो ! पर पापी वचन न बोलो, कलंकी हाथ न छुओ, कि मैं एक महाराज कालीचन्द के नाम की हूँ ! औरों के देखे, औरों के छुए से, सब जलती चिता मरते हैं, मुझे ठण्डी चिता आसन लगा मरना पड़ेगा।··· पर, हायरे, राम-राम ! हायरे, शिव-शिव ! मर जाए, बफौलों का नाम-लेवा, काठ-देवा ! वचन क्या बोले, जीभ उनकी नहीं कट गई, कान मेरे नहीं फूट गए, कि मैं फटी हुई धरती, खुदा हुआ गड्ढा खोजने लगी अपने लिए—'सुन प्यारी रुपाली, एक राजा कालीचन्द···बिना गुनगुना का भँवरा, बिना रस का रिखू[4] ! बिना तेल का दीपक, बिना तार का सितार, कि क्या कली बन खिलोगी, मिठास पा मोद, दीपक पा ज्योति दे सकोगी ? और क्या

1. प्रणाम। 2. बिल्ले। 3. बकरे। 4. गन्ना।

तार-सी झनक, पायल-सी खनक सकोगी ?···एक हम बाईस भाई बफौल हैं, कि सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के बिना छत्र के सम्राट्, बिना मुकुट के राजा हैं, कि राजा कालीचन्द तो हमारी मुट्ठी को फूल, हमारी हथेलियों को सुरती है—जब चाहेंगे, मसल कर रख देंगे !' काल की हथेली को सुरती-चूना, कालिका के मुँह को पान-बीड़े हो जाएँ, बाईस भाई बफौल पापी !" कमर की लोच स्कन्ध, स्कन्धों की लोच कमर तक लाकर, रानी रुपाली बोलती गई, "बैरियों के नाम का काला चरेवा[1] न रहे किसी के गले। बोले, 'सुन हो, प्यारी रुपाली ! तुम्हें हम बाईस भँवरों की एक कली, बाईस रसिकों की एक लली बनाकर रखेंगे, कि एक तुम बाईस सेजों की स्वामिनी बनोगी ! का-पुरुष कालीचन्द को तो हम तुम्हारे हाथ मेंहदी रचाने, तुम्हारे शीश को चँवर झुलाने वाला बनाएँगे, कि नाम उसका, बदल कर, कलुवा चाकर रख देंगे !' महाराज मेरे, मैं हाथ जोड़ रही थी, धरती धरमराज, गगन देवराज को—या फाँसी बफौलों के, या मेरे गले पड़े, या वज्र बफौलों के, या मेरे सिर पर गिरे, कि या पापी न रहें, या पाप का भागी न बचे।·· अब मेरी राह छोड़ो हो, महाराज ! आपके चरण की धूल माथे लगा, ठण्डी चिता आसन लगा मरूँगी। इस लोक आपको पाकर, खो दिया। उस लोक खोज-खोज अपना बनाऊँगी, कि सतियों में या नाम सावित्री का ही आता है, या मेरा ही आएगा !···"

एहो, कथा के सुनने वालो !

तिरिया के वचन, चोरों की शपथ का भरोसा कभी न करना, कि एक बावला राजा कालीचन्द भरोसा कर गया, कि लगी आग से सभी जलते थे, सुनी आग से जल गया—अंगार-सा दहक, बयार-सा बहक गया।

एहो, बयार जब बहकती है, फूल-पात का नाश करती है और जब राजा बहकता है, राज-पाट का नाश करता है !···चंचला-चपला-चटुली

---

1. मंगल-सूत्र।

रानी रुपाली के तिरिया-चरित्र के मकड़जाले में फँसे राजा कालीचन्द ने खड्ग हाथ ले, शपथ महाकाल की ली—"हूँ जो मैं चन्दवंशी राजा कालीचन्द, बाईस भाई बफौलों के नाम की बाईस मुट्ठी खाक अपनी काली कुमाऊँ में नहीं रहने दूंगा ! उनके वंश, बीज की साक्षी मक्खी भी बफौलीकोट में जीती नहीं रह पाएगी !···"



19

कथा-स्वामियों के नाम का गंगा-जल

इस चन्द्रमुखी रात्रि-वेला में—

वन की पाँखी डार, घर की माखी दीवार-बैठी सोई है…

इस सुखिया वेला, दुखिया एक मैं हूँ।

अपनी कथा के स्वामी बाईस भाई बफौलों के नाम पर, मैं रमौलिया रक्त-आँसू भर लाता हूँ, गंगा-जल और तुलसी-काठ चढ़ाता हूँ, कि चंचला-चपला-चटुली रानी डोटियाली की चिता जलती, तो मैं मंदिर दिए जलवाता, घर बताशे बँटवाता—पर, महल जल रहा है, मेरे कथा-धनी बाईस भाई बफौलों का, कि कलेजा फटता है, मुँह को आता है।…

अन्यायी राजा कालीचन्द के मशालधारी सिपाहियों का सरदार मर जाए, बफौलों की नींद को कभी न टूटने, साँस को कभी न चलने

वाली बना गए, कि उनके नाम की राख भी बोरों में भर-भर उठा ले गए, कि रानी रुपाली के मुंह में कीड़े पड़ गए थे—"राख बोरों में भरना, बफीलीकोट ले जाना। सौत मेरी न बनी, लली दूधकेला के आँगन में बिछाना। उसी राख में उसकी जनम-माता और धरम-पत्नी को सुई से छेद-छेद, मुट्ठियों से कूट-कूट मारना। महारानी रुपाली के कोप का सन्देश बफीलीकोट की बयार-सँग चलाना, पनार-सँग बहाना, कि बफीलीकोट में बफीलों का नाम लेनेवाली डार-पाँखी दीवार-माखी न रह जाए।"



20

बोल-बोल की व्यथा, कण्ठ-कण्ठ का रुदन—

रमौलिया[1] रे,

तेरी क्या दशा रूठ गई, क्या खोरी[2] फूट गई ।
अरे, अभागी···
च-च-च गदुवा (कद्दू)-जैसा कपाल लाया,
वो भी निकला दागी !
हरे हर···हरे हर···हाई रे राम, हाई रे शिबो···
कथा-स्वामी बफौल वीरों के महल क्या आग लग गई, कि···
(च-च-च माथा फोड़ने को हाथ, आँसू गिराने को परात माँग, रे

1. कथा-गायक । 2. सिर ।

रमौलिया !)

सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के सिर-छत्र, पीठ-आधार मर्यादा के बाईस प्रहरियों की एक चिता जल गई है आज !…

दिशा खुली। ढँपे-कमल, मुंदे-नयन खुले।…जली-बाती बुझी, बँधी-बाछी खुली।

पर, आज की सुबह कभी न आए गढ़ी चम्पावत नगरी में, कि गढ़ी चम्पावत के आबाल-वृद्धों के हृदयों पर बिना बादलों के वज्र गिर गए, कि वीर हमारे बाईस भाई बफौल नहीं रह गए हैं।

सारी गढ़ी में, बोल-बोल से हाहाकार, कंठ-कंठ से हुँकार फूटने लगी—"बफौल हमारे वीरों के महल में आग किसी और ने नहीं, उन चार अन्यायी मल्लों ने लगाई होगी, जिन्हें बफौल वीरों ने द्वारों का चाकर बनाके रखा है।"

पर, अंतःपुर से आग कुछ और बाहर फूटी—अनिष्ट ने तो होना ही था ?

अनिष्ट क्यों हुआ ? बिना बादलों के वज्र क्यों गिर पड़े, गढ़ी चम्पावत नगरी पर ?

महाकाल के सूर्यमुखी-शंख को किसी तिरिया ने बजाया है, कि सृष्टि-प्रलय के स्वामी महाकाल का तीसरा नेत्र उघड़ गया है।

महाकाल के राजवंशी सूर्य-मुखी शंख को किसने बजाया ?

महारानी भद्रा ने !

किसने ?

महारानी भद्रा ने !!

किसने ? किसने ?

महारानी भद्रा ने ! महारानी भद्रा ने !! महारानी भद्रा ने !!!

आज कान बैरी हो गए हैं, कि वाणी विपरीत हो गई है ?

उत्तेजित भीड़ प्रचंड हाहाकार करती, महारानी भद्रा के महल की

ओर बढ़ चली । वफौल नहीं रह गए, वफौलों की वैरन भी नहीं रहनी चाहिए ।

जोशी दीवान के कान खबर पहुँची ।

"कहाँ जा रहे हो, प्रजाजनो ? मशाल वाले दौड़ रहे हो, किस वैरी के अदिन आ गए हैं ?"

"अदिन वैरी के नहीं, अपनी गढ़ी चम्पावत नगरी के आ गए हैं, जोशी बा !"—प्रजाजनों के नेत्र गीले पहाड़-जैसे चू आए—"हमारे सिर के छत्र, पीठ के आधार—वफौल वीर नहीं रह गए हैं।"

"शांतं पापं !''''क्यों अन्यायी वचन भोर की वेला सुनाते हो, प्रजाजनो !"'''दीवान जोशी की जैसे कमर ही टूट गई—"वफौल मेरे बेटों से तो यम भी थर-थर काँप उठता था, प्रजाजनो !"

"घर के वैरी ने लंका आग लगा दी है, जोशी बा ! रावण नहीं जला, राम-लक्ष्मण जल गए है।"—प्रजाजन रुँधे-कंठ से बोले—"महारानी भद्रा रोज महाकाल का सूर्यमुखी राजवंशी शंख रानी बा रुपाली देवी के अनिष्ट के लिए बजाती थीं, पर महाकाल बाँके हमको हो गए हैं।'''हम महारानी भद्रा की राख नहीं रहने देंगे अपनी गढ़ी में, जोशी बा !"

और भीड़ तुमुल हाहाकार करती आगे बढ़ गई।

दीवान जोशी टूटे-स्वर में बोले—"महारानी भद्रा अब कहाँ महल में ? वह होती, यह महा अनिष्ट क्यों होता ? उसके माथे अक्षय-रेखाएँ थीं। शायद, उसके चरण ही गढ़ी से उठ गए होंगे।"

दूसरे ही क्षण, तेजी के साथ दीवान जोशी दौड़ पड़े, कि मेरी मति क्यों मारी गई है ?'''

* * *

हाथ मशाल तेल की, आँख मशाल खून की—गढ़ी चम्पावत नगरी

के प्रजाजन महारानी भद्रा के महल जा पहुंचे। वाणी से वचन क्या फूटे—"द्रोहिनी ! प्रजानाशिनी !! वंशघातिनी !!!"

और हाथ क्या ऊपर उठे, कि जिया-हिया आज उनका लोट लेता है, या भादों में सरयू की उत्ताल तरंगें लेती हैं, कि एक तरंग बैठती नहीं, दूसरी 'मैं कौन ?' कहती है—"महल से बाहर आ, पापिष्ठा ! आज हम काले बाल, गोरी खाल वाला तेरा घुंघुरिया मुण्ड[1], केशरिया रुण्ड मुट्ठी खाक बनाएंगे, लाख मन मिट्टी के नीचे दबाएंगे, कि पाप की जड़ दूब की जड़-सी न फूटे।"

बहुत खट्टे दही का जमावन डालने से दूध फटता है—बहुत ज्यादा रोष-तोष से आवाज फट जाती है।

और न दूध फटने से बिल्ली का, न आवाज फटने से गली (कंठ) कुछ बिगड़ता है।

पर, बुरी बात पीले पात-सी रह जाती है, कि एक से आदमी के मन, दूसरे से वन की शोभा घट जाती है।

यों, महल में महारानी भद्रा कहाँ है, कि उसके माथे की अक्षय-रेखाएँ ही गड़ी चम्पावत में उभरते-मिटने को रह जातीं, तो अनिष्ट ही क्यों होता ?

* * *

भोर का पहला पंछी चहका,

पहला फूल महका है—

'रमौलिया' महारानी भद्रा को प्रणाम करता है, कि महारानी

1. घुंघराले बाल वाला सिर।

भद्रा पहला प्रणाम भगवान् जागनाथ[1] को कर रही हैं, पहली नीर अंजलि भगवान् भास्कर को चढ़ा रही हैं, कि गढ़ी चम्पावत नगरी से निकली वृद्ध जागेश्वर के मंदिर में पहुँची हुई हैं, कि—जागनाथ परमेश्वर हो, गढ़ी चम्पावत के चंद-वंश की लाज रखना !



1. अलमोड़ा नगर से प्रायः अठारह मील की दूरी पर भगवान्-महाकाल का प्रसिद्ध जागेश्वर नागेश्वर मन्दिर है। यहां प्रस्थापित महाकाल को 'जागनाथ' भी कहते हैं।

21

मंगल-स्थान के राहु-केतु

जोशी दीवान, क्षिप्र गति से, गढ़ी नगरी के दिशा-द्वारों की ओर बढ़े।

मुख-दिशा कौन, पूर्व दिशा, कि जहाँ से भगवान् भास्कर का उदय, अन्धकार का अस्तान[1]।

पूर्व दिशा में, पूर्विया द्वार, कि पूर्विया द्वार में मल्ल पूर्विया पहरेदार, कि वफौल-ढुंगी उठाने के प्रयास में टूटे हाथ को पीठ पर लटकाए, ऊँघ रहा था।

दीवान जोशी निकट पहुँचे। आवाज लगाई—"पूर्वियामल्ल हो !"

---

1. निलय।

"कौन ?—" पूर्विया मल्ल अचानक नींद उचटने से, कड़ककर बोला, कि दीवान जोशी के कान एक लम्बी अवधि तक भनभनाते ही रह गए—कौन ? कौन ? कौन ?

भली भाँति उजाला हो चला था। पहली सुघड़ किरन उदयाचल चमकी, अस्ताचल तक के कमलासन-बैठे भँवरों को जगा गई, कि सुन्दरी नखों की कुरेदन रसिकों के मन-मन को भँवर, तन तन को तोता बना देती है।···

दीवान जोशी ने देखा—गढ़ी के पूर्विया-द्वार के दाएँ पार्श्व का कपाट[1] ही लापता है। उन्होंने प्रश्न-भरी आँखों से, पूर्विया मल्ल की ओर देखा।

पूर्विया मल्ल हँसकर, बोला—"सुनो हो, गढ़ी चम्पावत के दीवान जी ! एक स्वामी हमारे वफौल, एक आप। भृकुटि आपकी क्या तनती है, विना वान-के-वान हमें लगते हैं।·· बात यह है, दीवानजी, कि दाँया हाथ मेरा वफौल-ढुंगी की पूजा को पाती बन गया। सो, मैं दाँए द्वार का पहरा कैसे भरता ? इसीलिए, मैंने दाँया द्वार ही उखाड़कर, फेंक दिया है, कि द्वार ही जब नहीं रहेगा, तो पहरा न भरने का पाप सिर नहीं पड़ेगा।"

दीवान जोशी क्या कहते ?

बोले—"अच्छा, अच्छा, कोई बात नहीं। मैं तुम्हारी अक्ल को सात भैंसों की एक भैंस बराबर मानता हूँ। अब ऐसा करो, गढ़ी चम्पावत नगरी में रहने की तुम्हारी अवधि बीत चुकी। आज सातवाँ दिन आरम्भ हो गया। अब तुम चारों भाई मल्ल अपनी-अपनी राह लगो। यही आदेश लेकर, मैं तुम्हारे पास आया हूँ।"

"आदेश किसका ?"

"क्यों ? मेरा आदेश तुम नहीं मानोगे ?"

---

1. द्वार।

"एहो, दीवान जी ! जोर से मत बोलो। एक बूढ़े हो, उस पर तिनकिया। हाथ लाठी नहीं लाए हो, कमर टेढ़ी कैसे ले जाओगे ?" —पूर्विया मल्ल विद्रूप कर उठा—"सुनो हो, दीवान जी ! भृकुटि तनी किसे दिखाते हो ? तुम्हारे गोठ का बैल, तुम्हारे द्वार का कुत्ता तो हूँ नहीं ? जाओ, जिन वीर बफौलों के हम दास हैं, जिन्होंने सात दिनों का पहरा हमें सौंपा, उन्हीं को यहाँ भेजो, कि उनके आदेश बिना हम द्वार का पहरा नहीं छोड़ेंगे, प्राण भले ही छूट जाएँ।"

दीवान जोशी को आकाश देखनी, पाताल हेरनी हो गई।

बफौल नहीं रह गए हैं, यह जानते ही चारों मल्ल पिंजरे से छूटे शेर बन जाएँगे, कि उनके चम्पावत में रह जाने से एक रावण था लंका में, चार रावणों का चम्पावत नगरी में डेरा पड़ जाएगा। लाग लगाए से, फिर जाएँगे नहीं, कि चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन देते-देते कुमाऊँ-पछाऊँ में चिड़ियों के चुग्गे, पितरों के पिंडों के लिए दाना दुर्लभ हो जाएगा।

और जब ऐसी संकटापन्न स्थिति आ जाएगी, तब क्या होगा ? भूख से तड़फ-तड़फकर, कुमाऊँ-पछाऊँ के आबाल-वृद्ध प्राण त्यागेंगे, कि मानव जाति यहाँ के लिए पतझड़ के पात हो जाएगी।

जोशी दीवान की कल्पना में कुमाऊँ-पछाऊँ की धरती-पार्वती के पुत्रों की त्राहि-त्राहि का दृश्य उभर आया।

कड़ककर, बोले—"पूर्विया मल्ल, यह वीर बफौलों का ही आदेश है, कि सूरज उदय होते ही, कुमाऊँ-पछाऊँ की अस्ताचल-श्रेणी पार चले जाओ।"

"आँ-हाँ, आँ-हाँ, दीवान जी !—" पूर्विया मल्ल परिहास करता, बोला—"ये ऊँचे बोल, यह तिरछी-भृकुटि अपनी दिवानी घरवाली को सुनाना-दिखाना, कि पूर्विया मल्ल तुम्हारे दरबार का चपरासी नहीं, तुम्हारी जमीन का आसामी[1] नहीं है। सुनो हो, दीवान जी ! चार मन

---

1. जो लगान का हिस्सा देकर दूसरे की जमीन जोते

कलेवा जिनसे पाया, आठ मन भोजन जिनका खाया—उन्हीं बफौल स्वामियों के नाम की डकार लेते हैं, और उन्हीं बफौलों के मुख से आदेश भी स्वीकारेंगे, कि और किसी चलते-चाकर, भागते-चपरासी का नहीं। जाओ, बफौल हमारे स्वामियों को ही यहाँ लगाओ।···या, हम ही उन की सेवा में हाजर-नाजर हो जाएँगे।"

दीवान जोशी को इधर देखनी, उधर देखती हो गई, कि अब अन्यायी मल्लों से मुक्ति कैसे मिलेगी ?

"सुनो हो, दीवान जी ! जिनका दिया खाया, उनका दर्शन किए, उनको जौंल हाथ किए बिना जो हम चले जाएँगे, सात नरक सड़ेंगे। सो, बुरा न मानना, हमारी बात एक-की-सात बनाके बफौल स्वामियों के पास मत ले जाना, कि हम उनके कोप से थर-थर काँपते, पूस गर्मी, जेठ सर्दी देखते हैं।"—पूर्विया मल्ल बोला।

*   *   *

जोशी दीवान बारी-बारी प्रत्येक मल्ल के पास गए, पर बिना बफौलों के स्वयम् लगाए, जाने को कोई भी प्रस्तुत नहीं हुआ।

दक्षिणी मल्ल तो यहाँ तक बोला—"सुनो हो, दीवान जी, और कहीं जाकर, हम करेंगे ही क्या ? चार मन कलेवा, आठ मन भोजन किस ठौर मिलेगा ? सो, हम सब अपने बफौल स्वामियों की सेवा में उपस्थित होते हैं, कि या हमें चार द्वारों की चाकरी हमेशा के लिए सौंप दें, कि हमारा पापी पेट पलता रहे। या, अपनी बफौल-ढूंगी के नीचे हम चारों को हमेशा-हमेशा के लिए, 'कूटने-धान, पीसने-गेहूँ' बनादें, कि न पापी प्राण रहेंगे, न ये पहाड़-से शरीर ढोने पड़ेंगे।"

···दौड़ते-दौड़ते आए थे दीवान जोशी, रुकते-रुकते चले गए वापस, कि मल्लों को चम्पावत की अस्ताचल-श्रेणी पार करने का उनका उद्देश्य पूरा नहीं हो सका।

और इधर चारों भाई मल्ल, दिसा-द्वारों का पहरा छोड़, बफौलों की सेवा में हाजर-नाजर होने चले, कि आज कुमाऊँ-पछाऊँ की धरती-पार्वती के मंगल-स्थान पर बैठने चार राहु एक साथ चले, कि जैसे अदिन आज गढ़ी चम्पावत के आए हैं—रमौलिया कान पकड़ता है, दंडवत करता है—ऐसे किसी दुश्मन के बैल, अपने जेठू[1] के आएँ, कि न गायके का आसरा रहे गा, न धारिणी घर से भागेगी।



1. पत्नी का बड़ा भाई।

22

फूलों की दुर्गंध, पंछी की कुबानी—

वीर गढ़ी बफौलीकोट में

फूल खिले, दुर्गंध फैला गए,
पंछी बोले, कुबानी[1] सुना गए ।

*   *   *

बाईस बालों की एक लटा, बाईस फेरों की एक पगड़ी-सी बफौल-लक्ष्मी लली दूधकेला दूध दुह लाई, रक्त बन गया। फूल बीन लाई,

1. अशुभ वचन ।

काँटे बन गए ।

बावली-सी माँ जी के पास गई, कि 'माँ, ओ माँ ! जैसी कभी नहीं हुई, आज क्यों हो गई ?' और या आँसू उसके ही गिरने लगे, या सीस-धरी गागर ही फूट गई ।

माँ जी ने धैर्य बँधाने की चेष्टा की—"बावली न बन, बहू ! चफोल मेरे बेटों की स्मृति में तुझे काँटे भी फूल-से ही लगे होंगे, सो काँटे ही बीन लाई होगी । इन कुभागी पंछियों को क्या कहना, कल बहुत बेड़ू-घिंघारू[1] खा गए होंगे, सो आज अपच के मारे बोल रहे होंगे ।"

घड़ी-भर की अवधि न बीती होगी ।

लली दूबकेला, पानी भरने गई । बाईस पतियों के नाम पर, बाईस बार पानी भरने का प्रयास किया—गगरी हर बार रीती ही ऊपर आई, कि लली दूबकेला का हिया बैठ गया ।

रीती ही गगरी ले, घर को लौटी ।

दूर से देखा—बाईस बोरे पीठ पर लिए, बाईस सिपाही चले आ रहे हैं और उनके साथ-साथ बाईस कौवे 'गया-गया' बोलते उड़ रहे हैं, कि सुभागी कावे 'आ-आ' कहते हैं, स्वामी को परदेस से घर बुलाते हैं ।

लली दूबकेला गगरी फेंक, दौड़ी-दौड़ी, चफोलमाता के चरणों में गिर पड़ी—"माँ हो, आज की पवन उल्टी, किरन धुँधली लगती है मुझे—बुरे बोलों का भार हिया नहीं सह पाता, बुरे सपनों को नयन नहीं झेल पाते हैं । आज बाईस काले कौवे कुभागी हमारी चफोलीकोट को क्यों आ रहे हैं ? आज बाईस बोरे पीठ से लगाए बाईस राज-चाकर क्यों हिया-शंका, नयन-जलन उपजा रहे हैं ?"

चफोलमाता ने सामने शून्य की ओर ताका—लली दूबकेला सच कह रही थी ।

---

1. पहाड़ी फल ।

पर, वफौलों के किसी प्रकार के अनिष्ट की कल्पना कौन करे, कि उनकी रेख वाँकी करते, विधाता की कलम भी काँपती है ?

वोलीं—"वहू, वीर-पर्व हाल ही बीता है। वफौल मेरे वेटों के पराक्रम का पुरस्कार राज-चाकर ला रहे होंगे।"

"ना, माँ, ना। मैंने सपना और, सत्य और देखा है। जल्दी से किसी ज्योतिषी को बुलाओ, माँ, कि मेरी वाँई आँख फड़कती है, मुझे बाँई हो जाए···कहीं मेरे स्वामियों पर विपदा न आ पड़ी हो···?—" लली दूधकेला करुण क्रन्दन कर उठी।

वफौलमाता का हृदय काँप उठा—लक्ष्मी वहू यों विलख उठी है, न जाने क्या अनिष्ट सिर पर मँडरा रहा हैं ?

सांत्वना देने के लिए, वोली—"वहू, धीरज क्यों छोड़ती हो ? शायद, कहीं किसी गाँव में शादी होगी। गाँव के लोग घट (पनचक्की) में पीस के आटे के बोरे ले जा रहे होंगे।"

"हमारी वफौलीकोट में तो कोई शादी नहीं, माँ ? और न घट यहाँ का चम्पावत नगरी की दिशा में है।"

वफौल माता का हृदय बैठता चला गया—और इस बार वफौल-ढुंगी भी तो वफौलीकोट वापस नहीं पहुँची है ?

राज-चाकर पवन-वेग से महल की ओर वढ़ रहे थे।

वफौलमाता को सहसा ध्यान आया—कैलाश जाते साधु जी ने वफौलों पर अकारण राज-कोप की वात कही थी।

और इधर लली दूधकेला सिर-पाँव से भारी है। खट्टा खाती है, चिट्टा पहनती है। एक दीपक अधिक जलाती, एक फूल अधिक चढ़ाती है—पितरों को प्यारी बनने वाली है।

विकल-स्वर में बोलीं—"वहू, वेटी, लली दूधकेला मेरी ! तेरे अदिन अपने माथे ले जाऊँ, लाड़ली ! आज मेरा हिया भी काँपता है, आज मेरा वचन भी डगमगाता है। न-जाने वफौलीकोट के कौन दिन आने हैं। ला, वेटी ! अपने वस्त्र जल्दी मुझे पहना, मेरे तू पहन। ला,

विलम्ब न कर, कि तेरे पाँव भारी हैं, गात कुसुमिया है। हरी दूब की एक जड़, बफौल-वंश की अन्तिम निशानी तेरी धरोहर है। इसे पलक मूँदना, नयन-पुतली बनाना, आँचल ओढ़ाकर, दूध-धार पिलाना।"

* * *

राज-चाकर, रानी रुपाली के पठाए, कड़क कर, बोले—"ठहर, ओ बुढ़िया! किधर चली? वसन-वेश से बूढ़ी, चाल से छवीली है तू, कि तेरी एड़ियों की ठसक और, कमर की लचक और है, कि षोड़षी की चाल को मात करती है।"

लली दूधकेला भयातुर हो उठी। फिर, आपद काल समझ, संयत-स्वर में, बोली—"सुनो, हो, सरदारो! बुढ़ापे की वेला है, पाँव क्यों नहीं ठसकेंगे। कमर क्यों नहीं लचकेगी?"

एक राज-चाकर बोला—"सुन हो, बुढ़िया। बूढ़े पाँवों की ठसक, बूढ़ी कमरों की लचक हमने भी देखी है। पर, तेरी ठसक अलग, तेरी लचक अलग है, कि ऐसी ठसक-लचक या हमारी नई रानी रुपाली की ही है, या बाईस बफौलों की एक प्यारी लली दूधकेला की ही हो सकती है।"

लली दूधकेला क्या वचन बोली—"एहो, चपरासियो! सरदार तुम्हें समझती थी, कि तुम्हारे चेहरे तो वीर राजपूतों के से लगते हैं, पर, बातें तुम्हारी भाँड-कुम्हारों की-सी हैं, कि शायद, तुम अपने माँ-बाप की दोगल्ली[1] सन्तानें हो? अरे मूर्खो! लली दूधकेला की पाँव की तली देखोगे, पाँच दिवस आँखें चिमचिमाते रहोगे। मुँह देखोगे, अपने नगर-गाँव की दिशा बिसर जाओगे।···मैं बुढ़िया तो उनकी चरनदासी हूँ। दाँतों से दूधिया[2] हो चली हूँ, पर बालों से पूतिया[3] हूँ। लली दूधकेला तो आज उजले पलँग बैठी, बफौलों के नाम पर बाईस प्रकार के शृङ्गार

---

1. वर्ण-संकर। 2. दूध-मुँहे बालक-सी। 3. नाती-पोतों वाली।

कर रही है, बाईस रत्नों के आभूषण पहन रही है। हाए, रे ! उनमें से एक भी रत्न मेरे हाथ लग जाए, तो सात पुश्तों को बैठे-बैठे खिलाऊँ।"

राज-चाकरों ने रत्नों का नाम सुना, बाईस रत्नों की एक पहनने वाली के सौन्दर्य का वर्णन सुना, तो सोचने लगे, आज 'दोनों जात के रत्न' लूटने का मौका हाथ आया है।

लली दूधकेला लाठी टेकती आगे बढ़ गई।



23

धुँधले दीपक, गीले पिंड

"सुनो रे, लली दूधकेला का कूट के चावल, पीस के आटा बना आए, या नहीं ?"—बफौलीकोट से लौटे चाकरों से रानी रुपाली ने पूछा ।

"बाईस बोरे बफौलों की राख के थे, उन सबमें एक-एक अंग लली दूधकेला का भर आए हैं ।"—चाकर बोले—"पर, महारानी ज्यू[1] ! बफौलीकोट में एक बात अजब देखी, कि वहाँ के बुढ़ियों के पाँवों की ठसक, कमर की लचक कुछ ऐसी है, कि अपने पाँव जमीन से नहीं उठते ।"

"और लली दूधकेला ?"

---

1. जी ।

"मर जाएं, बफौलों की शादी करने वाले नाई-ब्राह्मण ! बाईस बानरों को एक फल, बाईस बिल्लियों को एक दूध-कटोरा थी, वह लली महर गाँव की—कुँवर के, चाट के निचोड़ा-नींबू बना रखी थी।"

चाकर अपने-अपने इनाम की अशर्फियाँ लेकर चलने लगे। रानी रुपाली बोली—"तुम बड़े स्वामिभक्त सिपाही हो, कल से सब सरदार बनाए जाओगे। तुम्हारे लिए अपने हाथों हलुवा बनाया है। इसे खाते जाओ।"

भूखे सिपाही हलुए पर हाथ फेरने लगे। इधर डकार ली, उधर प्राण-पखेरू बिना पाँख के उड़ चलें।

सुनो हो, कथा के भँवरो !

रानी रुपाली की क्रूर-रचना बिना साँप का जहर, बिना जहर की मौत बन जाती है, कि ऐसी चंचला, चपला, चटुली तिरिया का नाम 'रमौलिया' लेता है, छी-छी थूकता है—

कि, ऐसी कुलटा तिरिया का या तो नाम न लेना, हो ! या, लेना, तो ऐसे दाबना, कि जड़ नहीं फूटे, ऐसे गाढ़ना की स्याल[1] न निकाल पाएँ—कि, ऐसी पापिनी तिरिया का नाम रह जाने से इष्टों के नाम के दीपक धुँधले, पितरों के नाम के पिंड गीले होते हैं !



1. गीदड़।

उत्तरार्द्ध

24

मोहिनी-सोहिनी-तिरिया

एहो, कथा के लाड़लो !

हाट की कलिका मैया, हाट में दिग्दिगन्तर दाहिने हो जाएँ, तुम्हारे गोठ-बँधे बैलों, बैलों के [illegible] की हल की हूक को और गैया दुहती मैया, मैया की गोदी के बालक को, कि बैलों के कंधे कमजोर न पड़ें, कि हल की हूक डोले, फसल की अन्नपूर्णा दुबली न पड़े, कि गैया की दूध-धार कठिन न हो, कि बालकों के नाम के दूध-कटोरे रीते न रहें, कि बालकों के रेशम-डोरियों के पालने घर-आँगन में झूलते रहें, कि हिया का हुलास, जिया का मोद बढ़ता रहे।

एहो, मेरे धैर्यवान कथा-रसिको, कथा के वचन तुम्हारे कान को लग जाएँ, कि जिस चंदमुखी रात-बेला में निदियाली-बयार बह रही है, कि वन-डार की पाँती, घर-दीवार की बाती भी सो रही है, कि ऐसी निदियाली बयार-बेला में तुम्हारे आँखों की नींद [illegible]

को समर्पित हो गई है, कि मेरे कथा-स्वामी बाईस भाई बफौलों को तुलसी-पात की मुट्ठी, गंगा-जल की धार और चन्दन-काठ की चिता मिल गई थी, कि उनकी वीर-आत्माओं को वैकुण्ठलोक में ठौर मिले। रमौलिया हुड़क हाथ मारता है, उनको अपनी वाणी का सत् सौंपता है।

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए बफौलीकोट की माटी-परिपाटी का, कि इस चन्द्रमुखी रात्रि-वेला में मैं अपने कथा-प्रेमियों को प्रणाम सौंपता हूँ—कि, एहो, कथा के सुनने वालो, चन्द्रमुखी रात्रि के अब अन्तिम आसन लगने लग गए हैं, कि मैं भी अपनी कथा के अन्तिम आसनों के छंद खोलता हूँ, कि जो मैंने कहा था, कि तिरिया के नाम की तितपाती भी बुरी होती है, सो झूठ नहीं कहा था, कि चंचला-चपला और चटुली तिरिया का नाम आने से आँखों की ज्योति फीकी पड़ जाती है, कि मुँह की वाणी तीती हो जाती है !

एहो, एक समय के मध्य में, कमण्डलुधारी-कल्याणकारी, चौमुखी-चमत्कारी-वेदाष्टकी विधाता भी क्या तिरिया चटुली के फेर में पड़े, चौथी अवस्था में ऐसी मति बिसरी, कि उनको तिरिया की ललक क्या लगी, कमलासन काँटों की चौकी बन गया।

ब्रह्मा ने क्या सोचा, कि सृष्टि करते-करते मेरी यह चतुर्थावस्था आ गई, मगर 'घुरुवा के ही गेहूँ, घुरुवा का ही घट्[1], औरों के लिए लिए चार-चार, घुरुवा के लिए चौपट' वाला हिसाब हाथ आया है। एक-से-एक मोहिनी-सोहिनी रूपसियों की सृष्टि मैंने की, मगर 'आँव-गाँव के खागए, घर के गावें गीत' वाली कहावत चरितार्थ हुई, कि औरों की दीठ नहीं पहुँचेगी सोचकर, गहरे समुन्दर की तलहटी में लक्ष्मी की सर्जना की, मगर विष्णु की बाँकी दीठ ने काम बिगाड़ दिया। और ऊँचे हिमालय की असूर्यस्पर्शी गुफाओं में शैलजा पार्वती की सृष्टि रची

1. पनचक्की।

थी, डमरूधारी शंकर डिमक-डिमक डमरू बजाता वहाँ पहुँच गया।… अहा रे, तिल-तिल रूप बटोरा था, तिलोत्तमा रची थी, वह भी तन-मन को धूप में धरी नौनी-सी तिलमिलाती चली गई, कि रम्भा-उर्वशी-मेनका की रचना की थी, तो बाबा-दादा के नामों के प्रणाम सौंपकर, राजा इन्द्र के दरबार में ताथैया-ताथैया करने पहुँच गई—कि अहा रे, मेरे रूखे कपाल, सेज की सोने वाली सुन्दरियों के नाम पर वही मिसाल सामने आई, कि 'सिचाई-गोड़ाई अपने माथे पड़ी, फसल वन के वानरों के हिस्से लग गई।'

एहो, चौमुखी विधाता का चित्त आज क्या डाँवाडोल हो उठा, कि कमलासन छोड़ा उत्तर-हिमाल की घाटियों में बेचैन फिरने लग गए, कि आज एक ऐसी मोहिनी-सोहिनी तिरिया की सर्जना करूँगा, कि पार्वती-लक्ष्मी-इन्द्राणी के मुखों की ज्योति जिसे देखते ही धुँधली पड़ जाए, कि शंकर-विष्णु और इन्द्र छाती पीटते, हाय-हाय करते रह जाएँ!

अहारे, कमण्डलुधारी-कल्याणकारी, तीन लोक, चौदह भुवनों के स्वामी वेदमुखी ब्रह्मा क्या करनी करते हैं, क्या भरनी भरते हैं, आज ऊँचे हिमाल की बुरूँशघाटी में, कि फूलों-भरा पराग-केशर, पातों-अटकी ओस बटोरते हैं। हरी दूब की गाँठ, कमल-नाल की छाल सहेजते हैं, कि बिल्वपत्री-बुरूँशपत्री-रेखाओं का संजोग बिठाते हैं, कि विश्व-विमोहिनी भुवन-सोहिनी तिरिया की रचना करने लग गए हैं! नदी-किनारे के गंगलोढ़ों पर आसन लेती लहरों को देखते हैं, तो अनार-कुसुमी आँखों की बनावट में तरंग घोलते हैं, कि डाल-खिलते बुरूँश-फूल को देखते हैं, तो कलमी आम-जैसी-बनावट के कपोलों पर रंगत चढ़ाते हैं। वन-दौड़ती हिरनी को देखते हैं, तो घुटनों की घुंडियों पर हाथ फेरते हैं, कि आकाश-उड़ती पतंग की डोर देखते हैं, तो कमर पर वेदपत्री अंगुलियाँ फिराते हैं, कि वृक्षों की डाली अटारी बैठे कपोतों को देखते हैं, तो स्कंधों की बनावट को ठीक करते हैं।

अहारे, मुँह को निवाला, आँखों को नींद, और देह को विश्राम देना

विसर गए हैं विधाता, कि आँचल में गोल-गोल नाशपातियों का, जाँघों में लम्बी-लम्बी लौकियों का नक्शा उतारने लगे हैं, कि आप ही सर्जना करते, आप ही आँखों से आसक्ति, मुँह से लार टपकाते जाते हैं।

एहो, दिन बीते, मास लगे। मास गए, वर्ष पूरा हो गया, कि इधर वेदाष्टकी विधाता मोहिनी-सोहिनी तिरिया की रचना में लगे थे, कि उधर हिमाल-स्वामी शंकर, समुन्दर-स्वामी विष्णु, और इन्द्रलोक के राजा इन्द्र विधाता की खोज में चल पड़े, कि कमलासन पर वेद-पत्रों को पलटते-पलटते सृष्टि के स्वामी विधाता कहाँ लोप हो गए ?

अहा, रे अहा !

वेदाष्टकी विधाता ने मोहिनी-सोहिनी तिरिया की रचना पूरी कर डाली, कि रूपसी हँसी क्या, कि आधी रात को धूप-जैसी खिल उठी, रोई क्या, कि सूखे पथरौटों से पानी नितरने लगा।

कुछ क्षण तो विधाता अपनी चतुर्थावस्था की सुध-बुध ही नहीं सँभाल पाए, कि तरुणी तिरिया का जादू सबसे ज्यादा बूढ़े आशिकों के सिर पर ही चढ़ता है।

ज्यों-त्यों चलायमान-चित्त थोड़ा स्थिर हुआ, तो विधाता ने पूछा—"मोहिनी पहले तुम खिलखिला हँसीं क्यों, बाद में टुलटुल रोई क्यों ?"

मोहिनी-सोहिनी तिरिया नीलम-नयन मटकाती, अनार-कली चटकाती बैन क्या बोली—"एहो, मेरी सर्जना के स्वामी ! जिस हिया-ललक, नयन-लिप्सा से मोहाविष्ट होकर आपने मेरी कुसुम-काया की रचना की है, उससे मैं अपनी जनम-वेला के भी पहले से ही परिचित होती चली आई हूँ, कि जब मेरे बुरूँशिया-कपोलों और बेलपिण्डी आँचल[1] पर आप अपनी दो बिसी अँगुलियों को फिराते थे, तो···हाई, लाज से मेरी जीभ अटपटा रही है, कि कलमी-कपोलों पर आपके हाथों-चढ़ी रंगत और गहरी हो रही है।"

1. बेल के दानों के बराबर और सुपुष्ट उरोजों वाली छाती।

मोहिनी-सोहिनी तिरिया ने अपने वेलपिण्डी-आँचल पर अपनी दोनों हंसगौरी-भुजाएँ रख दीं, कलमी-कपोलों पर माथे-अटकी सुवरन-केशा-लट ढुलका दीं, कि विधाता के वाएँ हाथ का कमण्डलु हिल गया, तो जल छलका, कि मुख-मण्डल हिल गया, तो लार टपक पड़ी। एहो, तिरिया के सैन-वैनों को ससुराल का सुख, मायके का आसरा न मिले, कि कमण्लुधारी-कल्याणकारी ब्रह्मा के दाएँ हाथ की वेदपत्री डाल से टूटे, वावली वयार में छिटके पीपल-पत्ते-सी थरथराने लग गई, कि—'हाय मेरी मोहिनी, हाय मेरी सोहिनी ! हाय मेरी मोहिनी, हाय मेरी सोहिनी !...'

हट्ट, तुझ पुरुष-पगलैया चपला-चटुली तिरिया की तरुणाई को हरिद्वार, वद्री-केदार के शंड-मुशंड कुकर्मी जोगियों की जमात गीले गुड़ की भेली पर चिपटी मक्खियों-सी चिपट जाए, कि तेरे चंचल-चरित्तर का चिमटा संगम के नागा वावाओं के हाथ पड़ जाए—कि, तीन लोक, चौदह भुवनों के स्वामी वेदमुखी विधाता को ऐसा वावला वना दिया, कि त्रिखंडी-संसार का स्रष्टा रंडी के यार की तरह तेरे लिए वावला वन गया, कि—'हाय, मेरी मोहिनी !... हाय, मेरी सोहिनी।'

एहो, चंचला-चपला-चटुली मोहिनी-सोहिनी तिरिया के आगे के अगुवा, पीछे के पिछलगुवा और गाँव के मुखिया, पट्टी के पटवारी में से एक वाकी न वचे, कि जिसके कुसुमिया-कण्ठ से निकले वोल किरमड़ के तिमुखिया-काँटों को भी मात करते हैं !

वचन कैसे तिरचण्डाली वोली—"आँ-हाँ-हाँ ! एहो, मेरी सर्जना के स्वामी ! इस चतुर्थावस्था में सातवें-वरस के साँड की तरह वेकावू होना आपको शोभा नहीं देता, कि मुँह-सामने की तिरिया से संगति और पीठ-पीछे के दुश्मन से वैर करने में उतावली करना ठीक नहीं होता ! आपने पूछा था, कि पहले मैं हँसी क्यों, और वाद में रोई क्यों ? तो, एहो मेरे जनमदाता, मैं हँसी यों, कि आपने मुझे तो कुसुमिया-काया, तताए ताँवे-जैसी तरुणाई और सोलह वर्षों की सुनहली वयस्संधि दी, कि पुरुषजाति के वन-फूलों के भँवरे भी कली-काँख, कुसुम-पाँख छोड़कर, मेरे आस-पास

मँडराने लगे हैं। मगर अपनी थुलथुली-देह, ढलती-उमर को ज्यों-का-त्यों ही रहने दिया, कि आपके मन का मोह, आपकी आँखों की आसक्ति देखती हूँ, तो आपकी बाँहों में झलने की तृष्णा जागती है, मगर आपके देह की सिकुड़ी-खाल, धीमी-ढाल और झूलती-कमर, फूलती-जटाएँ देखती हूँ, तो आपके चरणों में बाबाजी, पायलागों !' कहने का मन होता है ! सो, एहो तीन लोक चौदह भुवनों के स्वामी ! पहले अपनी जर्जर काया की भी नयी रचना-सर्जना करो, कि आपकी यह मोहिनी-सोहिनी कन्या-कुँवरी सोलह के नाम पर चौंसठ शृङ्गार करेगी, कि सेज सोएगी, सुवास फैला देगी। एहो, मेरी सर्जना के स्वामी, मैं रोई भी इसीलिए, कि यदि आपकी काया चतुर्थावस्था से यों ही जर्जर-चौपट रही, तो न-जाने मुझ अबला को मर्त्यलोक के नरों, देव-लोक के नारायणों में से कौन अपने घर उठा ले जाए, कि तिरिया की तरुणाई पर पुरुष की वृद्धावस्था का पहरा ज्यादा दिन नहीं टिकता है !

एहो, कथा के लाड़लो, 'बाप से बेटी, गडेरी से गेठी[1] बड़ी' इसी को कहते हैं, कि हाथ का मसला मैल, माथे का चंदन-टीका ऐसे ही बनता है, कि सैन-बैनों की बाँकी तिरिया ऐसे ही हिमाल-जैसे ऊँचे कर्मों और सागर-जैसी गम्भीर बुद्धि वाले पुरुषों को चौरस्ते के चमार, रंडी के यार की तरह नाच नचाती है, कि अखिल ब्रह्माण्ड के स्रष्टा-स्वामी कल्याणकारी विधाता चपला-चटुली मोहिनी-सोहिनी के मोह-जाल में ऐसे फँस गए, कि कमण्डलु से अभिषेकी-जल निकालकर, सिर की सफेद जटाएँ काली और देह की चिमचिमी चमड़ी लाल कुतकुतान बनाने लग गए, आज उत्तर-हिमाल की बुरूँशघाटी में !

1. गडेरी और गेठी का शाक बनाया जाता है। डेरी आकार और स्वाद दोनों में गेठी से श्रेष्ठ होती है।

25

तिरिया भलो न काठ की

ए हो, कथा के ठाकुरो !

रमौलिया की वाणी के वचन गूंगे हो गए हैं, आँखों की ज्योति धुंवला गई है, कि—अहा रे, कैसी अनहोनी घटना घट रही थी उत्तर-हिमाल की वरूँशघाटी में, कि कोटि-कोटि भाग्यों के विधाता कमलासनी ब्रह्मा एक अपने कपाल की बाँकी रेखाओं का हिसाब लगाना भूल गए, कि 'कुवेर के घर की कंगाली, धन्वन्तरि का पेटशूल' इसी को कहते हैं !

हरि, हे हरि ! राम, हे राम !

च-च-च···

इधर वेदमुखी विधाता अपनी वृद्धावस्था की बुढ़ंनी, देह का चिमचिमापन और गात की झुरझुरी निकालने में लगे थे, कि उधर वुरूँशघाटी की वनखण्डी-बयार बौराती कहाँ पहुँची ? हिमाल के शंकर, समुन्दर के विष्णु और देवलोक के इन्द्र राजा के समीप, कि मोहिनी-

सोहिनी तिरिया के कुसुमिया-गात की गंध, कपोत-पंखी-कपोलों के केशर ने क्या चमत्कार किया, कि तीनों देवराजा आगे को पाँव बढ़ाना, पीछे की छाया बदलना बिसर गए। बुरूँशघाटी की वनखण्डी-बयार से तीनों देवराजा क्या प्रश्न पूछते हैं,—कि 'हँली वनखण्डी बहूरानी, किस धरती की माटी, किस वन की घाटी की यात्रा करके आ रही है तू, कि तेरे स्पर्श-मात्र से मन की दशा और, तन की दशा और हो रही है ?'

एहो, वनखण्डी बहूरानी क्या बाँके वचन बोली, कि—'एहो, देवराजाओ, आज वेदमुखी विधाता ने बुरूँशघाटी में क्या कौतुक रचा है, कि तीनों लोकों से न्यारी तिरिया मोहिनी-सोहिनी की सर्जना की है, कि उसकी चरण-तली की शोभा अप्सराओं के मुख-मण्डलों की शोभा को मात करती है। अब उसे अपनी सेज की सेजवती, अपनी बाँहों का बाजूबंद बनाने के लिए, कमण्डलुधारी-कल्याणकारी ब्रह्मा अपनी वृद्धावस्था का बोझ उतारने में लगे हुए हैं, कि···

अर-र-र-र···

तीनों देवराजा वनखण्डी-बयार के पूरे वचन कहाँ से सुनेंगे, चित्त के चलायमान, गात के चंचल होकर, बुरूँशघाटी को दौड़ने लगे, कि—जैसे अनब्याई कलड़ी के गात की गंध पाकर, सरसों के खेत में का साँड अपने वश में नहीं रह पाता ! कि, अहारे, चपला-चटुली मोहिनी-सोहिनी तिरिया, तेरे चरित्तरों से तीन लोकों के स्वामी देवराजा भी पार नहीं पा सके, कि मिट्टी-पानी का बना नर कहां अपने को काबू में रख सकता है, कि तिरिया के सैन-बैन पवन की दिशा, ऋषि-मुनियों के आसन बदल देते हैं।

एहो, आज तीनों देवराजा मोहिनी-सोहिनी तिरिया की खोज में बरूँशघाटी के कँकरीले-पथरीले वनपथों पर ऐसे दौड़ रहे हैं, कि सेव-नाशपाती के बगीचों की ओर दौड़ने वाले वन के वानरों की चाल भी मात हो रही है।

इधर वेदमुखी ब्रह्मा का कमण्डलु-भीतर का हाथ कमण्डलु में ही रह

गया, कि 'मेरे सुख के शत्रुओं ने यहाँ भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ा, कि चौरस्ते के आवारा साँडों-जैसे दौड़ते चले आ रहे हैं, कि ये सत्यानाशी मेरी मोहिनी-सोहिनी को मेरे लिए थोड़े ही छोड़ेंगे ?'

एहो, वनियों के प्राण औरों की दौलत, वुड्ढों के प्राण उनकी जवान पत्नियों में अटके रहते हैं, कि मोहिनी-सोहिनी तिरिया को औरों की दीठ से वचाने के लिए चौमुखी-चमत्कारी ब्रह्मा ने क्या विधान बनाया, क्या कौतुक रचा, कि मोहिनी-सोहिनी तिरिया पर अपने वाएँ हाथ के कमण्डलु का जल-छींटा मारा, कि कुसुमिया माँस-पिण्ड को काठ वना दिया ! —कि, जव काठ भी तिरिया को देखेंगे, तो तीनों तिरिया-लोभी देवराजा अपना-जैसा मुंह लेके लौट जाएँगे, और मैं वाद में फिर इसे अभिषेकी-जल का आचमन दूंगा, प्राण-प्रतिष्ठा करूंगा, कि एक ब्रह्मलोक तो मेरा देव लोक में है, कि दूसरा उससे भी आलीशान ब्रह्मलोक इस वुरूँशघाटी में वसाऊँगा ।

* * *

'मैं पहले, मैं पहले' करते, तीनों देवराजा चौमुखी ब्रह्मा के पास पहुँचे, तो यह देखकर खिसिया गए, कि काठ की मोहिनी-सोहिनी तिरिया एक ओर पड़ी है और वेदाव्यायी विधाता उनकी दयनीय-दशा पर वाँकी हँसी हँस रहे हैं—"एहो, महादेवताजनो ! वगीचे में घुसने वाले वानरों, खिरक में घुसने वाले साँडों की तरह ध्वाँ-फ्वाँ-ध्वाँ-फ्वाँ दौड़ते कहाँ से चले आ रहे हो ?"

खिसियाये देवराजा विष्णु वोले—"एहो, वेदमुखी विधाता, हमारा नमस्कार लो ! वात यह है, कि इधर लगभग एक वर्ष से आप अपने ब्रह्मलोक से लोप रहे हैं, सो हम लोग घवरा गए थे, कि न-जाने हमारे कमलासनी-ब्रह्मा पर कौन-सी विपत्ति आ पड़ी । आपकी शोध में ही यहाँ तक आ पहुँचे, तो यह देखकर आश्चर्य हो रहा है, कि इस

वृद्धावस्था में अब आप सृष्टि को सँभालना छोड़कर, बढ़ईगिरी में लगे हुए हैं !"

हिमाल-स्वामी शंकर क्या पूछने लगे, कि–"एहो, वेदमुखी विधाता ! जरा मुझे यह तो बताइए, कि आपने यह काठ की तिरिया क्यों बनाई है ? खाट बनाते, तो हम समझते, कमलासन पर सोते-सोते जी भर गया होगा, सेज बदलने की इच्छा होगी। मुगदर बनाते, तो हम सोचते, कि कमलासन पर सोए-सोए सुस्ती आ गई होगी, कसरत करने की बान ढाल रहे होंगे। हल बनाते आप, तो हम सोचते, कि बुरूँशघाटी की बंजर धरती को उपजाऊ बनाने की बात सोच रहे हैं, ताकि आपकी सृष्टि के नरों का पेट भरे ! मगर, यह काठ की तिरिया आपके क्या काम लगेगी, कि अगर ब्रह्मलोक के अपने मोतियामहल में रखेंगे इसे आप, तो बेकार में ब्रह्माणी जी को सौतिया-डाह ले डूबेगा, कि अच्छा किया, इस वृद्धावस्था में मेरी छाती पर कील-जैसी ठोंकी है !..."

बमशंकर भोले अट्टहास कर ही रहे थे, कि इन्द्रराजा क्या बोले, कि—"इस काठ की तिरिया की शोभा तो मेरे दरबार में ही हो सकती, कि मेनका-उर्वशी इसे देखेंगी, तो अपने रूप पर इठलाना छोड़ देंगी।"

इतना कहते-कहते, इन्द्रराजा काठ की तिरिया को उठाने ही लगे थे, कि समुन्दर-स्वामी विष्णु बोले—"नहीं, इस काठ की तिरिया की शोभा तो मेरी शेष-शैया के सिरहाने ही बढ़ सकती है, कि इसका रूप देखेंगी, तो लक्ष्मी, घर-घर डोलना छोड़कर, एक मेरी सेवा में चित्त लगाएँगी !"

अब बमशंकर से भी नहीं रहा गया। बोले—"अहा, इस दृष्टि से तो यह काठ की तिरिया मेरे लिए अधिक आवश्यक है, कि एकदम सूने-वीराने उत्तर-हिमाल में मेरा आसन लगा करता है। और पार्वती जी निकट के मायके वाली ठहरीं, सो बेर-बेर मुझे अकेला ही छोड़ जाती हैं ! बस, भूत-बैतालों की संगति-रह जाती है। अब इस काठ की तिरिया को अपने साथ ले जाऊँगा, तो जरा मेरा मन भी बहलेगा और पार्वती जी

भी मायके जाने की बान विसरेंगी।"

इतने वचन बोल, बमशंकर ने उस काठ की मोहिनी-सोहिनी तिरिया को उठाया ही था कि एक ओर से इन्द्र राजा खींचने लगे, "मैं ले जाऊँगा", दूसरी ओर से विष्णु खेंचने लगे, "नहीं, मैं ले जाऊँगा।' और ब्रह्मा ने वाँहों में भर लिया, कि "यह तो मेरी सर्जना है, मैं इसका स्वामी हूँ !"

और उस काठ की चपला-चटुली तिरिया मोहिनी-सोहिनी के मोह में फँसे चारों देवराजाओं में ऐसी खेंच-तान आरम्भ हो गई, कि सड़क के आवारा कुत्ते भी ऐसे किसी हड्डी-बोटी को नहीं खींचते हैं ! मोहिनी-सोहिनी तिरिया को छीनने में चारों नारायणों ने अपनी-अपनी शक्ति ऐसी लगाई, कि मोहिनी-सोहिनी का अंग-अंग खण्डित हो गया, मिट्टी में मिल गया और चारों देवराजा—शीशा तोड़कर, खिसियाए वानरों-जैसे—चुपचाप अपने-अपने लोक को लौट गए, कि पुरखे जो यह कह गए, तो झूठ नहीं कह गए, कि 'तिरिया भली न काठ की, तस्कर भला न डोर का—आश्रय भला न ससुर का, संग भला न चोर का !'

* * *

एहो, कथा के लाड़लो !

इस अज्ञानी रमौलिया के ये टूटे-फूटे वचन ध्यान में धर लेना, कि चपला-चटुली तिरिया, हाड़-माँस की छोड़, काठ की भी भली नहीं होती, कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्रराजा तो देवराजा ठहरे, कि उनको मोहिनी-सोहिनी तिरिया का विष नहीं व्याप सकता। मगर मर्त्यलोक के नरों के लिए उन्होंने एक मिसाल छोड़ दी, कि चंपला-चंचला और चटुली तिरिया के फेर में पड़ने से अनिष्ट ही होता है, कल्याण नहीं, कि इस कथा की वेला रमौलिया उन्हें अपनी नमो-नारायण सौंपता है !

26

तिरिया के सत्यानाशी सैन-बैनों की भद्रा



राजा के राज-पाट, प्रजा के घर-घाट के अदिन

एहो, चंचला-चपला-चटुली तिरिया रानी रुपाली के सत्यानाशी सैन-बैनों से कुमति के राजा कालीचन्द की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, कि उसने बाईस भाई बफौलों के महल में आग लगवा दी थी, कि पूरी गढ़ी चम्पावत नगरी के राज-पाट के लिए अ-मंगल न्यौत लिया था।

*   *   *

इधर बाईस भाई बफौलों के जलाए जाने के अशकुनिया-अक्षर फैले, कि उधर चार भाई मल्लों का अट्टहास गूंज उठा—"धन्य हो, रे हमारे

पंचपिता पंचनाम देवो, कि हम चारभाई मल्लों को दाहिने हो गए हो। बफौल हमारे दुश्मन नहीं रह गए हैं, कि अब इस सारी कुमाऊँ-पछाऊँ में कोई माई का लाल, गाई का बछड़ा नहीं, कि जो हमसे टक्कर ले सके।"

पूर्विया मल्ल, पश्चिमिया मल्ल—
उत्तरी मल्ल, दक्षिणी मल्ल !

चारों चलते-पहाड़ अपने राक्षसी-पाँवों की धमक से धरती धँसाते, आकाश कँपाते राजा कालीचन्द के दरबार की ओर चल पड़े, कि अब और कहाँ जाना है ? चार मन का कलेवा, आठ मनों का भोजन गढ़ी चम्पावत के ही राज-दरबार से पाएँगे, कि खाएँगे-पिएँगे मौज करेंगे, कि दसगजिया टोपी, चौंसठगजिया चोला पहनेंगे और चौदह विद्या की कुश्ती खेलेंगे, धौंसा बजाएँगे।

राजा कालीचन्द के राज-पाट के अदिन आ गए, कि चपला-चटुली तिरिया मैया महारानी बनी सुवर्ण-सिंहासन को पलीत कर रही है, कि मूढ़ों का सरदार बुद्धिवल्लभ सेना का सेनापति बना हुआ है, वीरों की पाँत कलंकित करता है, कि जहाँ वीरगढ़ी बफौलीकोट के स्वामी, धरती-पार्वती के लाड़ले बाईस भाई बफौलों के कल्याणकारी-आसन लगा करते थे, वहाँ सत्यानाशी मल्लों की चौकी लग गई है।

एहो, सत्यानाशी-कर्मचांडाली मल्ल राजा कालीचन्द के राज-दरबार में कैसे बाँके वचन बोलते हैं—"एहो, राजा कालीचन्द ! बाईस भाई बफौलों की ठौर खाली हो गई है, इसका शोक तुम जरा-सा भी मत करो, कि अब हम चार भाई मल्ल तुम्हारे दरबार की शोभा बढ़ाएँगे। एहो, राजा कालीचन्द, हम पंचनाम देवों के मंत्रपूत मल्ल अब तुम्हारे राज-दरबार की चाकरी करेंगे, कि चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन करेंगे, कि कुश्ती खेलेंगे, धरती धौंसा बजाएँगे, कि तुम्हारी गढ़ी चम्पावत नगरी की शोभा बढ़ाएँगे।"

हरि, हे हरि !

दीवान जोशी विज्ञानचन्द्र और राजा कालीचन्द गात से दुर्बल, मन के मलीन होने लग गए हैं, कि इन सत्यानाशी मल्लों के लिए इतना अन्न-वस्त्र हम कैसे जुटा पाएँगे, कि गढ़ी चम्पावत के राज-भण्डार का अन्न तो ये चारों भाई मल्ल कुछ ही दिनों में चौपट कर देंगे।

राम, हे राम !

कुमाऊँ-पछाऊँ का खड्गधारी राजा कालीचन्द टुल-टुल-टुल-टुल आँसू टपकाने लग गया, कि मैं जो बाईस भाई बफ़ौलों का वंश-नाश न करता, तो ये चारों मल्ल क्यों मेरी छाती पर घुटने टेकते ? अब कैसे मुक्ति मिलेगी, इन सत्यानाशी मल्लों से ?

एहो, डोटीगढ़ी की कुवचनिया-कुलक्षणा तिरिया आज काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ के लोगों के घर-घाट को वैरन बन गई है, कैसे सत्यानाशी वचन बोलती है, कि—"एहो, राजाजी ! चित्त चलायमान, गात कम्पायमान क्यों हो रहा है आपका ? ये चार भाई मल्ल राज-दरबार में रहेंगे, तो दशों-दिशाओं में कीर्त्ति तो आपकी ही फैलेगी ? और जहाँ तक इनके भोजन-वस्त्र का सवाल है—एक-एक कुटुम्ब के पीछे इनके भोजन-वस्त्र का राज-कर लगादो, कि पंचनाम देवों के नाम की फूल-पाती चढ़ाने वाली आपकी काली कुमाऊँ के लोग पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्रों को भोजन-वस्त्र देकर, पुण्य बटोरेंगे और अपना-अपना परलोक सुधारेंगे।"

द, रे, चंचला-चपला-चटुली रानी रुपाली ! ऐसे घर-घाट-विनाशी पुण्य बटोरने, परलोक सुधारने की अमंगलकारी घड़ी तेरे पालनेवालों की डोटीगढ़ी में आ जाए, कि तेरे सत्यानाशी सैन-बैनों की भद्रा को चौरस्ते के चमार की झाड़ू लग जाए, कि राजा के राज-पाट, प्रजा के घर-घाटों को अनिष्ट न्यौतती है तू, कि तेरे अशकुनिया मुख-बोलों पर श्मशान-घाट की मिट्टी पड़ जावे !

❁

27

माता का हिया : पूत के वचन

वीरगढ़ी वफौलीकोट की धरती के लाल, कुमाऊँ-पछाऊँ के विना छत्र के सम्राट् वाईस भाई वफौलों के विनाश की हृदय-विदारक क़था कुमाऊँ-पछाऊँ के नर-नारियों के कण्ठ-कण्ठ को रुँधाने लगी थी, कि उधर अपने मायके महर गाँव में पहुँची लली दूधकेला के लिए हाथ-चूड़ी हथकड़ी वन गई, कण्ठ-चरेवा गलफाँस वन गया, कि माथे की सिंदूर-रेखा वैरन वन गई, तन-मन को लमछड़िया नागिन-जैसी डँसने लगी।

हरि, हे हरि ! राम, हे राम !

वीर वफौलों के हिये का हार लली दूधकेला विलाप करती है, कि आँखों के मोती, अधरों के वोल धूल में मिलाती है—"वफौल, मेरे स्वामी, वफौल मेरे प्यारे ! वफौल मेरे स्वामी, वफौल मेरे प्यारे।"

शिव, हे शिव !

ललो दूधकेला के कण्ठ का करुण-क्रन्दन बनैली-बयार, पनैली-धार जैसा महरगाँव की माटी में शीश धुनता है—"बफौल मेरे स्वामी, बफौल मेरे प्यारे! बफौल मेरे स्वामी, बफौल मेरे प्यारे! अब किसके लिए बफौलीकोट के आँगनों में खड़ी गढ़ी चम्पावत की दिशा में आँखें लगाती रहूँगी, मेरे स्वामी? गैया दुहती था, दूध-कटोरे भरती थी, अब किसके नाम पर भरूँगी, मेरे स्वामी, कि मेरे रीते दूध-कटोरों की लाज कौन रखेगा? किनके नाम की फूल-पाती ईष्ट-पितरों को चढ़ाऊँगी, मेरे स्वामी, कि मैं तो आज सुहागिनी से अभागिनी बन गई हूँ, कि मेरे अशकुनिया-आँचल की छाया से अब वन के काँटे भी मुख फेरेंगे, कि मैं दुखियारी अब अपना अशकुनिया-मुख औरों को कैसे दिखा सकूंगी?"

इष्टों को नैवेद्य, पितरों को पिंड देने वाली सुमंगला ललो दूधकेला विलाप क्या करती है, कि आँगन के पथरौटों पर दरार पड़ रही है—"हे ईश्वर, हे परमेश्वर? बफौल मेरे स्वामी वन के शेरों से भी बलवान, गोदी के बालकों से भी भोले थे, कि जिन सत्यानाशियों ने मेरे ऐसे बफौल स्वामियों को सुख से नहीं रहने दिया, उनका नाश कौन करेगा?"

विलाप करती, शीश धुनती ललो दूधकेला सूने वन आई, चिता रचाने लगी, कि—

जब बफौल मेरे स्वामी नहीं रह गए, तो मैं अमंगला जीवित रहके क्या करूँगी?

एहो, कुसुमिया-गात, केशरिया-पिण्ड वाली कमलनयना ललो दूधकेला आँसू बहाती है, कि ओस-बूंदों से भरे पिनालू के पात-जैसे पलटाती है, कि सूखे काठ बीनती है, चन्दन-चिता रचाती है।

चन्दन-चिता रचाई, शृङ्गार उतारा। अग्नि-अभिषेक देकर; अपने बफौल स्वामियों के चरणों का ध्यान धरती ललो दूधकेला चलती-चिता को अर्पित होना ही चाहती थी, कि ललो दूधकेला की कोख का अपूरा-अजन्मा पूत उसका आंचल टुलटुलाने, गात कुतकुताने लगा, कि नीड़-

बैठे पंछी-पोथिल-जैसा क्या चहकता है—"ठहर, ओ माँ, ! क्यों तू इतनी बावली हो गई है, कि तुझे अपने अजन्मे-छौने का मोह भी नहीं रह गया है ? तू चिता जलेगी, ओ माँ, तो तेरे साथ ही वफौल-वंश की जड़ भी भस्म हो जाएगी, कि ऊँचे हिमाल, गहरे समुन्दर-जैसे धर्म-कर्म के वली वाईस भाई वफौल जो गढ़ी चम्पावत नगरी में मारे गए, उनका तारण कौन करेगा ? कौन उनके नाम के श्राद्ध-न्यौतेगा, ओ माँ, कौन उनके नाम पर काशी-प्रयाग के तीर्थ-घाटों में आचमन करेगा, और कौन उनके हंत-घात का वदला लेगा ?"

अहारे, सुमंगला लली दूधकेला की कोख का अजन्मा वीरवंशी पूत पूजा के अक्षतों-जैसे वचन विखेरता है, माता का हिया हुलसाता है, कि—"ठहर, ओ माँ ! मन मलीन, हिया हारमान न वना, कि तू विलविलाती-विलखती है, तो मेरी छाती में दरार पड़ती है, कि—ले, एक अनहोनी आज मैं भी करता हूँ, कि पूत जनमते हैं, टिहाँ-टिहाँ रोते हैं, कि माताएँ उन्हें आँचल में लेके, हिल्लुरी-हिल्लुरी कराकर, चुप कराती हैं, कि आज में तेरा वफौलवंशी पूत जनमता हूँ, कि तेरी आँखों के आँसू पोंछूंगा, तुझे चुप कराऊँगा, ओ माँ !"

* * *

ए हो, कथा के ठाकुरो !

रमौलिया हुड़क-पुड़ी पर हाथ मारता है, वोल क्या निकालता है, कि लाख की उमर हो तेरी, मेरे वफौलवंशी वेटे, कि तुझे गोद खिलाने वाली मैया, तेरा दूध-कटोरा भरने वाली गैया को आकाश के इन्द्रराजा, धरती के भूमिया देवता दाहिने हो जाएँ।

अहारे, माता का हिया दुःखी देखा, जन्मधारी वन गया वफौलों के वंश का दीपक, कि चमत्कार क्या करने लगा, कि रुआँसी माता की आँखों के आँसू पोंछता, दुधैली-हँसी विखेरता, कैसे वरदानी-वचन वोलने

लगा; कि—"मैया रे, हिया का क्लेश दूर कर, कि एक वचन, दो वचन, तीन वचन—वचन टालूँ, नरक पड़ूँ। सुन, कि मैं तेरा बफौलवंशी-पूत तुझे वचन देता हूँ, कि तेरे बाइसों रीते दूध-कटोरों का दूध अकेला मैं पिऊँगा; कि तेरा दुःख त्रिलमाऊँगा, अपना बल-विक्रम बढ़ाऊँगा, कि जिस गढ़ी चम्पावत नगरी के अन्यायी राजा ने मेरे पिता श्री बफौलों की हत्या कराई है, उसका सिर मूँडूंगा, कढ़ाई का टोपा पहनाऊँगा, मूँछ मूँडूंगा; उलटे तवे का मोसा लगाकर, मुँह काला करूँगा, कि उल्टे गधे की पीठ पर बिठाऊँगा, गढ़ी चम्पावत नगरी में घुमाऊँगा।...तू धीरज धर, ओ माँ, कि मुझे अपने आँचल का दूध पिला। मैं तेरे दूध की लाज रखने को अपना शीश चढ़ाऊँगा, कि अपने पिता श्री बफौलों का गोत्र उजला, वंश नामधारी बनाऊँगा।"

लली दूधकेला के गए प्राण लौट आए, कि जैसे शीतल जल की धार पाकर मुरझाई लौकी-लता हरियाती है, ऐसे ही पूत के वचनों से दुखियारी माता का हिया हरसता है, गात पुलकता है।

७

एहो, काल की करवट, कि पवन की हिलोर, की ऋतुरानी के आसन बदलते हैं, कि कभी तापसी धूप, कभी बरखा-बहार, कि गंगा का पानी, खेतों का अन्न बढ़ता है।···और कभी हिमाली-बयार के स्वामी मंसीर-पूस-माघ-फागुन का चमत्कार, कि बर्फ के फूल सिर्फ इन्हीं चार महीनों फूलते हैं।

अहारे, जब ऋतुरानी के आसन बदलते हैं, तो बड़े-बड़े महलों की मालकिन गौरैया रानी क्या कौतुक करती है, कि घास-फूस के तिनके बटोरती है, अपने लिए एक छोटा-सा घोंसला बनाती है।

अहारे, अन्नपूर्णा खेती की ग्वालिन गौरैयारानी क्या करती है, कि औरों के हाथों से छूटे अन्न-दानों को बटोरती है और घोंसले में बैठी अन्न-दानों के आकार के अंडे देती है, कि उदर-लोमों का चँवर झुलाती है, और सृष्टि-रचना में वेदमुखी विधाता का भार बँटाती है। मोतिया महलों की मालकिन अन्नपूर्णा, खेती की ग्वालिन गौरैया के छोटे-छोटे पोथिल[1] च्या-च्याँ करते हैं, तो गोठ की गैया भी ब्याती है और दूध-कटोरों के भाग खुल जाते हैं और घर की बहूरानी की गोदी में भी बालक उतर आता है, कि जिसकी टिहाँ-टिहाँ किलकारियों, मुल-मुल मुस्कुराहटों से मिट्टी की घर-गृहस्थी सोने के स्वर्गलोक के सुखों को मात कर देती है।

एहो, मेरी कथा के ठाकुरो!

ऐसे ही, तुम्हारे घर की देली के ऊपर भी महलों की मालकिन, खेतों की ग्वालिन गौरैया रानी के घोंसले लग जाएँ; तुम्हारे गोठ की गैया का बछड़ा भी कुतकने-धुतकने लग जाए और तुम्हारे घर की घरिणी के आँचल में भी कुसुमकंठी बालक किलकारी भरने लग जाए, कि घोंसले की मालकिन गौरैया रानी के पोथिलों को पंख उगते हैं, तो

1. छोटे-छोटे बच्चे।

खेतों के अन्न की रखवाली[1] को दौड़ते हैं, कि गोठ की गैया का बछड़ा बढ़ता है, तो खूंटा हिलाता है, हल को कांधा, खेत की मिट्टी को कल्याणकारी-लीक और बीज को उगाऊ-ठौर देता है। ऐसे ही, घरिणी की गोदी का बाल-गोपाल बढ़ता है, तो गोदी से उतर कर, आंगन को, आंगन से आगे बढ़कर गांव को, गांव से आगे बढ़कर देश की शोभा बढ़ाता है, कि गोरैया रानी के पोथिलों, गैया के बछड़ों और मैया के बालगोपालों को रमौलिया की उमर लग जाए।

एहो, मेरी कथा के लाड़लो !

महलों की मालकिन, खेतों की ग्वालिन गोरैया रानी के जैसे फर-फरिया पंख ऋतुरानी को भी फूटते रहते हैं, कि दिवसपंखिनी ऋतुरानी के आसन बदलते हैं, काल की करवट और पवन की हिलोर बदलती है, तो घर-भखारों का अन्न बदलता है, गोठ-खिरकों की घास बदलती है। —कि, ऐसे ही रमौलिया की कथा के आंखर भी बदलते हैं और रमौलिया हुड़के की पुड़ी पर हाथ मारता, पम-पुकी-पम-पम करता है, इस चन्द्र-मुखी रात्रि-वेला में।



1. किसानों का यह विश्वास है, कि गोरैया के पूत खेतों के अन्न को अपना ही समझते हैं, और पंख लगते ही, खेतों में पहुंचकर, फसल को नष्ट करने वाले कीड़े-मकोड़ों को खाना शुरू कर देते हैं।

29

जात का घोड़ा : औकात का बछड़ा

अहारे, पवन की हिलोर, काल की करवट बदली, कि सुमंगला लली दूध-केला के पूत की किलकारी भी बदल गई, कि कैसा वीरधर्मी बालक जन्मा है, लली दूधकेला की कोख से—

कि, बाँहों झुलाती है, तो कंधे चरमराने लगते हैं;

कि, झूलना झुलाती है, तो रामबाण की सतलट-रस्सियाँ टूटने लगती हैं;

कि, खटिया सुलाती है, तो साल-शीशम के पाए चटक जाते हैं;

कि, आँगन में खेल लगाती है, तो आँगन के चौड़े पथरौटों में दरार पड़ जाती है !

अहारे, लली दूधकेला की गोदी के बफौलवंशी-बालक को जो बाँकी दीठ लगाए, उसे भोर की धूप, साँझ की बयार दुर्लभ हो जाए, कि गात का कैसा गुदगुदा, पिण्ड का कैसा पराक्रमी है, लली का लाड़ला पूत, कि

बांज फल्यांट के वन में का देवदार-जैसा सारी महर-पट्टी में औरों से अलग ही दिखाई पड़ता है, कि घुनघुनिया[1]-चाल चलता है, तो घर की दीवारों को हिला देता है, कि ठुमुक-ठुमुक हिट्टी-हिट्टी करता है, तो उसकी पिनालू[2]-पात-चौड़ी पगतलियों की छाप पथरौटों पर उतर जाती है।

*　　　*　　　*

लली दूधकेला आज सुख से सरसों-सी फूल रही थी, कि आज ग्यारहवाँ-दिन लग गया है गोदी के बालक को, कि अब इसका कल्याणकारी नाम रखवा लेना चाहिए।

लली दूधकेला चली, कि अपने पिताश्री टुन महर से कहकर, ब्राह्मण न्यौतेगी, बालक का नाम धराएगी। आगे बढ़ रही थी, कि आँगन के पथरौटों को भारी वफौलवंशी मुलमुल मुस्कुराने लग गया, कि गात से गदराई लली दूधकेला ने दौड़कर गोदी में लेना चाहा, कि—दीठ न लगे वीरवंशी बालक को—खुद धरती से लग गई।

अहारे, गात का गुदगुदा, पिण्ड का पराक्रमी, रूप का रूपैला, भावों का भण्डारी वफौलवंशी कैसे मधुर मोदक-जैसे वचन बोलने लगा, कि—"मैया रे, मेरा नाम धरने को ब्राह्मण मत न्यौत, कि कहीं मेरे गात-पिण्ड को ब्राह्मण की दीठ लग गई, तो मेरा बल-विक्रम घट जाएगा, कि ब्राह्मणों के घरों में गात के दुबले, पिण्ड के पतले बालक जनमते हैं।··· मैं वफौलवंशी-बेटा हूँ तेरा, कि तू मेरा नाम अभी अजित वफौल रख, कि मैं अपने पिताश्री वफौलों के बल-विक्रम की कीर्त्ति-ध्वजा को और ऊँचे गगन में फहराऊँगा।"

एहो, कथा के लाड़लो!

---

1. घुटन-घुटनों　　2. घुइयां।

आज दुन महर के आँगन में लली दूबकेला के लाड़-प्यार की धूप खिल-खिलाती है, कि 'मेरे अजित मेरे बफौलवंशी !' कहती है, बालक को आँचल से लगाती है, कि 'मेरे अजित, मेरे बफौलवंशी ।' दुहराती है, स्वर्गवासी-स्वामियों के नाम के आँसुओं का आचमन करती है, कि ऐसी सुमंगला लली के मुख के वचनों से गोदी के बालक का बल-विक्रम बढ़ता है, कि ऐसी पतिव्रता नारी के आँसुओं से पितरों का तारण होता है।

* * *

अहा रे, बफौलवंशी बालक दिन और, रात और शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा-जैसा बढ़ने लग गया, कि दूध-कटोरों के नाम पर दुन महर के घर की दोमनिया तौलियों की खिचड़ी कम पड़ने लग गई, कि जिस बालक की छवि देखने से आँखों का उजियाली, खेतों की हरियाली बढ़ती है, ऐसे बल-विक्रम के बाँके बालक को कर्मों के कंगाल दुन महर, मुट्ठी की कंजूस कलावती मामी की कुदृष्टि व्यापने लगी।

अरे, जो बालक दूध-कटोरों का भोग लगाता, उसे खड़मासों[1] की खिचड़ी खिलाने लगे, कि इस बैरी को पेटशूल उठेगा, तो हमारी छाती का शूल भी हटेगा।

* * *

अजित बफौल क्या करता था, कि कुश्ती खेलता था, तो कलावती के बेटों की हड्डी-पसलियों का मलीदा बनाता था, कि कबड्डी खेलता था, तो महरगाँव के बड़े-बड़े मुसटण्डे पहलवानों की कमर एक ही हाथ से पकड़ता था, हाड़-मांस एक लगा देता था !

---

1. अनदली-उड़द।

अहारे, दोमन खड़मासों की खिचड़ी का खवैया वालक अजित क्या करता है, कि जिस वन में जाता है, शेर गुगाट-डुडाट करना विसर जाते हैं, कि जिस अखाड़े में जाता है, महर-पट्टी के महामल्ल घर से वाहर नहीं निकलते हैं, कि ऐसा वल-विक्रम का वाँका वफौलवंशी दुश्मनों की आँखों की ज्योति धुँधली, माता के आँचल की आस उजली करता है।

एहो, कथा के लाड़लो !

दिन वीतते, मास लगते, मास वीतते, वरस लगते रहे, कि लली दूधकेला का लाड़ला पूत मुट्ठी से भींचकर पथरौटों का मैदा वनाने लग गया, कि सारी महरपट्टी में, वाईस वफौलों का एक वफौल अजित ऐसे-ऐसे चमत्कारी पराक्रम दिखाने लग गया, कि कण्ठ-कण्ठ से यही कहावत फूटने लगी, कि 'जात का घोड़ा, औकात का वछड़ा ऐसा ही होता है।'

30

चन्द्र-कुल का वंश-दीपक

भोर-वेला की फूल-पाती,

साँझ-वेला की दीप-बाती से इष्ट-पितरों के नाम के नैवेद्य-पिण्डों की परम्परा नहीं टूटती, कि सुमंगला धारणी के पुण्य उजागर होते हैं।

कथा-वेला के रमौलिया-कण्ठ से उसके कथा-स्वामियों के नाम के शकुन-आँखर फूटते हैं, कि उनकी वंश-बेलि फूलती-फलती है, तो रमौलिया के हिस्से की अन्न-मूठ बढ़ती है।

* * *

एहो, कथा के ठाकुरो !

उधर बारह बीसी की महरपट्टी में बफौलवंशी-बेटा अजित कुंवर

वन के शेर, मैदान के हाथियों को मात करता है, कि इधर अलकापुरी में महारानी भद्रा की गोद का राजकुँवर विमलचन्द मैया का हिया हुलसाता, नानी का गात पुलकाता है। नगर-हाट में निकलता है, तो बड़े-बड़े योद्धा शीश झुका देते हैं, 'जै हो, राजकुँवर विमलचन्द की।' पुकारते हैं। नदी-घाट में जाता है, तो तरुणियों के कण्ठ की 'लाड़ले राजकुँवर, प्यारे विमलचन्द' ! पाता है, कि धुरफाट[1] जाता है, तो शेर सियारों की पंगत में चलने लगते हैं।

ऐसे पराक्रमी राजकुँवर को पाकर, महारानी भद्रा की एक आँख सुखियारी, एक आँख दुखियारी है, कि एक पूत से पुत्रवंती हूँ मैं, गोद मेरी सुफल हो गई है, मगर कहीं राजकुँवर विमलचन्द की चर्चा अलकापुरी से गढ़ी चम्पावत नगरी तक पहुँच गई, तो ?

जिस रानी रुपाली ने बाईस भाई बफौलों का वंश-नाश कर दिया, वह इस राजवंशी कुँवर को कहाँ सुख से रहने देगी ? चार चांडाल मल्लों की सत्यानाशी-चौकी आजकल गढ़ी चम्पावत के राज-दरबार में लगी हुई है। कहीं कोई कुचक्र रच के रानी रुपाली राजकुँवर को गढ़ी चम्पावत नगरी न मँगवाले ? महाराज कालीचन्द तो उसके सैन-वैनों के वशीभूत चलुवा-चाकर बने हुए हैं !

अहारे, आज बाईस भाई बफौल होते, तो राजकुँवर विमलचन्द गढ़ी चम्पावत नगरी में नौलाख कण्ठों की जय-जयकार पाता, कि लाड़ले क्या कहते थे—'जिस दिन चन्द-वंश की सूनी-अटारी पर दीपक जलेगा, हम बाईसों बफौल गगन-गुंजैली दुंदुभि, पाताल-थरथरैया नगाड़े बजाएँगे !'

मगर, महारानी भद्रा सोचती है, आज चन्द-वंश का दीपक जलता है, तो हिया हरसता नहीं, कलपता है, कि इसे रानी रुपाली और चार चांडाल मल्लों की कोप-दृष्टि से कैसे सुरक्षित रखा जाए ? आजकल

---

1. वनांचल।

ठौर-ठौर महाराज कालीचन्द का संदेश फिर रहा है, कि 'जो माई का लाल चार भाई मल्लों को पराजित करेगा, उसे सेना का सेनापति, दरबार का दीवान बनाया जाएगा !'···राजकुँवर विमल तक पहुँचा यह संदेश, तो उसका राजवंशी रक्त उबलेगा, वश में रहना कठिन हो जाएगा, कि अभी तो उसकी खेलने-खाने की उमर है, चार चांडाल मल्लों के हाथ पड़ गया, तो फूल-सा मसल देंगे।

* * *

एहो, जब बयार बहती है, तो जलते-दीपक को आँचल-ओट करना पड़ता है, कि महारानी भद्रा ने चन्द-कुल के वंश-दीपक राजकुँवर विमलचन्द को आँचल से ढाँप लिया—"मेरे लाड़ले, जब मैं गढ़ी चम्पावत को छोड़कर, यहाँ को चली थी, तो रास्ते में भगवान् जागनाथ के जागेश्वर-मन्दिर में रात को दीपक[1] लिया था, कि चन्द-वंश की अटारी अँधियारी न रहे।···दुखियारी के आँसुओं को भगवान् जागनाथ का आशीर्वाद मिल गया, कि आज मैं पूतवंती हूँ, पितरों की आस उजागर

---

1. वृद्ध जागेश्वर और बाल जागेश्वर—दो मन्दिर हैं, अलमोड़ा नगर से लगभग बीस-इक्कीस मील की दूरी पर। कुमाऊँ के लोगों में यह विश्रुति प्रचलित है, कि भगवान् शंकर के जागेश्वर मन्दिर में दीपक लेने से वंध्या को भी पुत्र-प्राप्ति होती है। सन्तान-मुख देखने की मंगल-लालसा लिए जागेश्वर के मन्दिर में, सात या नौ रात्रियों-भर, सन्तानेच्छुक-नारी अपने दोनों हाथों की अंजलि में जलता-दीपक लिए खड़ी रहती है और ईश्वर-प्रार्थना करती रहती है। इन दिनों उसे अखण्ड-व्रत-भी रखना पड़ता है। इसी को 'दीपक लेना' कहते हैं। यह परम्परा अभी तक चली आ रही है। संतान प्राप्ति होने पर, जागेश्वर के मन्दिर में 'बधाई' दी जाती है।

कर रही हूँ।···और, मेरे पूत, मेरे कुँवर, वहीं एक साधु महाराज ने कहा था, कि 'बारहवें-वर्ष में राजकुँवर की लिए कुण्डली कल्याणकारी नहीं है, कि उसे साधु-वेश देना, वन-खण्डों में घुमाना।'···सो, मेरे पूत, अब तुझे संन्यासी-चोला धारण करना है, कि तेरी कुण्डली का अमंगल मेरे माथे पड़े, मैं तुझे वन-खण्डों में घुमाऊँगी। राजमहलों का सुख छोड़ूँगी, वन-खण्डों के कन्द-मूलों का आसरा लूंगी, कि जब तेरे अदिन मेरे आँचल पड़ जाएँगे—तुझे चन्द-वंश की सोनखण्डी-राजगद्दी पर चँवर झुलाऊँगी।"

धन्य-धन्य कहता हूँ, मैं रमौलिया, तुझ मन की मोहिला, आँचल की अन्नपूर्णा महतारी को, कि पूत को विपदा नहीं व्यापे, इसलिए उसका मुँड-मुँडवा लिया। मुकुट उतारा, गोखुरी-चुटिया रखवा दी, कि कान फड़वा दिए, सोने के कुण्डल उतारे, काठ के मुनुरे[2] पहना दिए। संन्यासी-चोला पहनाया, दाएँ हाथ चिमटा, बाएँ हाथ कमण्डलु पकड़ा दिया, कि स्वयं भी संन्यासिनी बनी महलों की महारानी 'भिक्षा दे, माई, भिक्षा दे, भाई!' कहती बीहड़ वन-खण्डों की ओर निकल गई, कि 'जब तक गढ़ी चम्पावत नगरी के राज-दरबार से चांडाल मल्लों की सत्यानाशी-चौकी नहीं हटेगी, तब तक महाराज कालीचन्द के राज-पाट पर से रानी रुपाली का तिरिया-शासन नहीं हटेगा, तब तक अपने पूत—चन्द-कुल के वंश-दीपक—को आँचल-ओट से परे नहीं होने दूँगी।'



1. काठ की बालियां, जिन्हें नाम पंथी संन्यासी पहनते हैं।

[illegible]

[illegible] के अदिन

[illegible] पुतलियों का हेरा-फेरा लगता [illegible] रसिकों की नयन- [illegible] दीतती, चन्द्रमुखी [illegible] हेरा लगा करता था, आज [illegible] अपने कथा-आंतरां [illegible] के गंगा-जल [illegible] बालकों की किलकारी से [illegible] धुंधली नहीं पड़े, कि [illegible] है, कि—

[illegible]

*

*

*

कर रही हूँ।···और, मेरे पूत, मेरे कुँवर, वहीं एक साधु महाराज ने कहा था, कि 'बारहवें-वर्ष में राजकुँवर की लिए कुण्डली कल्याणकारी नहीं है, कि उसे साधु-वेश देना, वन-खण्डों में घुमाना।'···सो, मेरे पूत, अब तुझे संन्यासी-चोला धारण करना है, कि तेरी कुण्डली का अमंगल मेरे माथे पड़े, मैं तुझे वन-खण्डों में घुमाऊँगी। राजमहलों का सुख छोड़ूँगी, वन-खण्डों के कन्द-मूलों का आसरा लूँगी, कि जब तेरे अदिन मेरे आँचल पड़ जाएँगे—तुझे चन्द-वंश की सोनखण्डी-राजगद्दी पर चँवर झुलाऊँगी।"

धन्य-धन्य कहता हूँ, मैं रमौलिया, तुझ मन की मोहिला, आँचल की अन्नपूर्णा महतारी को, कि पूत को विपदा नहीं व्यापे, इसलिए उसका मुंड-मुंडवा लिया। मुकुट उतारा, गोखुरी-चुटिया रखवा दी, कि कान फड़वा दिए, सोने के कुण्डल उतारे, काठ के मुनुरे[2] पहना दिए। संन्यासी-चोला पहनाया, दाएँ हाथ चिमटा, बाएँ हाथ कमण्डलु पकड़ा दिया, कि स्वयं भी संन्यासिनी बनी महलों की महारानी 'भिक्षा दे, माई, भिक्षा दे, भाई!' कहती बीहड़ वन-खण्डों की ओर निकल गई, कि 'जब तक गढ़ी चम्पावत नगरी के राज-दरबार से चांडाल मल्लों की सत्यानाशी-चौकी नहीं हटेगी, तब तक महाराज कालीचन्द के राज-पाट पर से रानी रुपाली का तिरिया-शासन नहीं हटेगा, तब तक अपने पूत—चन्द-कुल के वंश-दीपक—को आँचल-ओट से परे नहीं होने दूंगी।'



1. काठ की बालियां, जिन्हें नाम पंथी संन्यासी पहनते हैं।

31

कथा-वेला को अँखरौटो के अदिन

ए हो, जलती दीप-बाती पर बनात-पंखिनी पुतलियों का हेरा-फेरा लगता है, कि चलती कथा-पाती पर तुम कथा के रसिकों की नयन-ज्योति, हिया-हिलोर का हेरा-फेरा लगता है, कि इस बीतती, चन्द्रमुखी रात्रि-वेला जिन आँखों में सुख के सपनों का डेरा लगा करता था, आज चलती कथा-पाती की वेला उन्हीं आँखों में रमौलिया अपने कथा-आँखरों का अंजन आँजो रहा है, कभी कथा-स्वामियों के नाम के गंगा-जल से गीली और कभी बफौलवंशी-चन्दवंशी वीर बालकों की किलकारी से हर्ष-बावली होती इन आँखों की ज्योति कभी धुँधली नहीं पड़े, कि रमौलिया अपनी वाणी के वचनों का सत् सौंपता है, कि—

सत्, रे सत् !







सत् रह जाए गढ़ी चम्पावत की चौदह हाथ चौड़ी सड़क का, कि चम्पावत की चण्डिका का संदेश, हाट की कालिका के दरबार में, कि सोर के लिंगावतारी सैमराजा का संदेश, घाट के शिवशंकर के दरबार में पहुँचाती है।

एहो, कथा के लाड़लो, चौदह हाथ चौड़ी सड़क का काम क्या होता है, कि तराई-भाबर का गुड़-चना शौक्याण देश, शौक्याण देश का शिलाजीत-सोहागा तराई-भावर पहुँचाती है। उत्तराखण्ड के यात्री को दक्षिणावर्त्त और पूर्वियाखण्ड के यात्री को पश्चिमीखण्डों की सैर कराती है, कि जिस चौड़ी सड़क पर तुम्हारे पाँव पड़ें, वहाँ कंकर-काँटों की छाया न पड़े।

कि, ऐसे ही रमौलिया के मुख से निकली कथा-वेला की अँखरौटी का काम क्या होता है, कि कथा के रसिकों को पंचाचूली की गुरुस्थली से गढ़ी चम्पावत नगरी के राजा कालीचन्द; राजा कालीचन्द के दरबार से वीरगढ़ी वफौलीकोट और वफौलीकोट से महरगाँव; महरगाँव से अलकापुरी की कथा-यात्रा करवाती है, कि चित्त-चित्त का क्लेश हरती है, चरण-चरण के काँटे बीनती है, कि सुख के शब्द, वैभव के वचन देती है।

...मगर, आज यह अज्ञानी रमौलिया किस रहते सिर-छत्र के चरित्र-चटुल पर-पुरुषों की संगति करने वाली चांडाली का मुख देख कर आया, कि उसकी कथा की अँखरौटी को बेर-बेर अदिन व्याप रहे हैं, कि कथा-स्वामी बाईस-भाई वफौलों के नाम का गंगा-जल आँखों से अभी पूरा नितरा भी नहीं था, कि...

राम, हे राम !

शिव, हे शिव !

—कैसे रमौलिया अपने हिया का क्लेश झेले, कि जिन चन्दवंशी राजाओं के राज में कुमाऊँ-खण्ड के नर-नारी छत्तीस व्यंजनों का भोग, सुखियारी निंदिया की पलक लगाते थे, उन्हीं के वंश में उपजे राजा

कालीचन्द के राज-पाट में घर-घर, घाट-घाट, गाँव-गाँव, हाट-हाट में हाहाकार मचा हुआ है, कि काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ के नर-नारी धरती धाप मारते हैं, करुण विलाप करते हैं, कि आज अन्यायी राजा कालीचन्द के राज में हमारा रखवाला कोई नहीं रह गया है, कि मुख के अन्न-ग्रास छिन गए हैं, इस पातकी राजा के राज में !

रमौलिया रे, तेरी कल्याणकारी कथा की कुंडली में किस सोहिनी-मोहिनी तिरिया के यार, चतुर्थावस्था के चमार विधाता ने सत्यानाशी-आँखर लिख दिए, कि तेरी कथा की अँखरौटी के अदिन उसी को लग जाएँ, कि उसे राह चलने को लाठी, देह पसारने को बिस्तरा नहीं मिले, कि न उपन्याठी विधाता कमलपत्री-सेज पर सोएगा, न गात की गुदगुदी से गदराकर, मोहिनी-सोहिनी तिरिया के सपने देखेगा !

32

चांडालों की चौकड़ी, अन्न-बालों का विध्वंस

पूर्विया मल्ल, पश्चिमी मल्ल,

कि—

उत्तरी मल्ल, दक्षिणी मल्ल—

एहो, एक गात के दो टुकड़े सिरखण्डी राहु, धड़खण्डी केतु जिस अभागे की जनम-कुंडली में अपना आसन लगा देते हैं, उसके गाँठ के बैलों से लेकर, घर-भखारों की अन्न-मूठ तक का बीज-उजाड़ करते हैं, कि उसे बिना अपच के ही प्राणघाती पेटशूल उठता है, कि उसकी अटारी का दीपक बिना तेल-बाती का रह जाता है और जिस भरपूर भण्डारी घर में साल-जमाल वासमती के भात का भोग लगा करता था,

उसमें अष्टमी-नवमी के श्राद्धों में पितर बिना पिण्ड पाए ही लौट जाते हैं !

राम, हे राम !

शिव, हे शिव !

गढ़ी चम्पावत नगरी की कल्याण-कुंडली के ऐसे कुदिन आए, कि उसमें चार चांडालों का एक अन्यायी आसन लग गया था, कि चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन करते थे, कि बावन गज का चोला गात में, अठारह गज की टोपी सिर पर पहनते थे, कि गढ़ी चम्पावत की बावन होरों की राज-सभा के विशाल प्रांगण में चौमसिया-साँड़ों को मात करने वाली करमचण्डाली कुश्तियाँ खेलते थे और सिर का टोपा, गात का चोला धूल में मिला देते थे, कि दूसरी भोर को फिर नया टोपा, नया चोला माँगते थे सत्यानाशी !

हरि, हे हरि !

ऐसा दिन दिखला गया, बुरे दिनों का फेर—
जहाँ मोतिया महल था, वहाँ धूल का ढेर !

एहो, जिस संगमरमरी स्तम्भों से चमचमाती राज-सभा में बनात-मखमल का बिछौना बिछा रहता था, कि जिस बावन होरों की चन्द-वंशी-राज-सभा के बनात-मखमलिया-प्रांगण में चतुर-सुजानों, सरदार-दीवानों की पंगत बैठा करती थी और धरती की माटी, प्रजा की परिपाटियों को धन्य-धन्य करने वाली मंगलकारी वार्ताएँ होती थीं—उसी कल्याणकारी राज-सभा को चार चांडालों की चौकड़ी ने हुँकार-फुँकार का धौंसा बजा-बजाकर के, कमर-कमर गहरे गड्ढे खोद करके, मल्ल-अखाड़ा बना दिया था, कि अब राजा कालीचन्द सचमुच ही उनका कलुवा चाकर-जैसा हारमान हिया, पलायमान पुरुषार्थ लिए एक ओर बैठा रहता था ! अब अत्याचारी मल्लों ने क्या शर्त बाँध रखी थी, कि जबतक हमारी टक्कर का योद्धा नहीं ढूंढेगा, मय अपनी राजरानी के बिना सिर-छत्र-गात-चोले के दिन-भर हमारे मल्ल-अखाड़े में बैठा

रहेगा !···गरमी लगेगी, तो तू चँवर झुलाएगा, कि प्यास लगेगी, तो तेरी राजरानी ताम्र-कलशों को अपनी कलाइयाँ लगाएगी, कि जब तक इस गढ़ी चम्पावत नगरी में हम चार भाई मल्ल रहेंगे, तुझे सुख की पलक नहीं झपकाने देंगे, गात का चँवरिया, घाट का धोबी और मल्ल-अखाड़े का चाकर बनाकर रखेंगे, कि तू भी जरा याद करेगा, कि पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र मल्लों को अपने दिशा-द्वारों का पहरुवा दरवान बनाना कैसा होता है !'

एहो, चार चाण्डाल मल्लों के अन्यायी आसन जब से लगे थे गढ़ी चम्पावत नगरी में, कि उसी दिन से राजा कालीचन्द के राज-पाट के अदिन भी आ गए थे, कि एक बरस बीता, दो बीते। बीतते-बीतते यह बारहवाँ-बरस लग गया था, कि अब सारी काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ का एक छत्र स्वामी राजा कालीचन्द चार मल्लों का कलुवा चाकर बन गया था, कि बीते ग्यारह वर्षों में राजा कालीचन्द ने माल देश के भरड़, बुक्शाड़ देश के जादूगर न्यौते थे, कि सौन डुंगर के सौन पैग, डोटीगढ़ी के धामी न्यौते थे, कि 'जो कोई पिता का पूत, माई का लाल, मेरी गढ़ी चम्पावत में आकर चार मल्लों की चौकी यहाँ से उखाड़ेगा, उसे गात का मखमलिया-चोला, शीश का सोनखण्डी मुकुट और हाथ का रजतखण्डी खड्ग दूंगा, कि मेरी बावन होरों की राज-सभा में सबसे ऊँची चौकी उसी को मिलेगी, और उसके वंशजों में से किसी को पट्टी का पटवारी, किसी को गाँव का मुखिया, किसी को तहसील का तहसीलदार, किसी को कोट का कोटपाल बनाऊँगा, कि किसी को सेना का सेनापति, किसी को लाव-लश्कर का अधिकारी और किसी को भण्डार का भण्डारी बनाऊँगा !'

और राजा कालीचन्द के ये वीर-न्यौतार-वचन विजेसारी बजंत्रियों के ढोलियों और तेलकूट नगाड़ों के चोपदारों के द्वारा दिशा-दिशा, द्वार-द्वार घुमाए गए थे, कि घिनाकुटी-घिनान्-तिनान्···

है कोई पिता का पूत ?

कि, दन्-दणाक्कि-दन्-दन्...

है कोई माई का लाल ?

और बिजेसारी बजंत्री, तेलकूट नगाड़े पर सौंटे पड़ते थे, कि वीर-धर्मी पैगों के कमर की मंसलौटी कंधे की ओर सरकती थी, कि कंधों पर की चमलौटी कमर की ओर उतरती थी !

मगर, चार भाई मल्लों के साथ कुश्ती खेलने जो भी पहुँचा, उसी की उन चाण्डालों ने ऐसी दुर्गति बनाई, कि सिर मुट्ठी से पकड़ा, अनार-दाने जैसा फोड़ दिया, कि कमर पकड़ी, तो ऐसी पकड़ी, कि हड्डियों का मैदा, माँस का मलीदा बनाके छोड़ दिया ! भाल के भरड़, बुक्शाड़ के जादूगर और सौन डुँगर के सौन, डोटीगढ़ी के धामियों के रुण्ड-मुण्डों को चार दिशाओं में उछाल दिया, कि—एहो, गढ़ी चम्पावत नगरी के लोगों ! हमारे जन्मदाता पंचनाम देवों ने कंदुक-क्रीड़ा की जो नई किस्म सिखलाई थी, उसे अब हम तुम्हें प्रत्यक्ष दिखला रहे हैं !'

हरि, हे हरि !

मर जाए उन पंचनाम देवों की गुरुखली के फौड़े-चिमटे और तिमूर-सौंटे सँभालने वाला, कि जिनके उपजाए अन्यायी मल्लों ने काली कुमाऊँ, पाली पचाऊँ के पहलवानों की काया को ऐसा कम्पायमान बना दिया, बड़े-बड़े योद्धाओं का मैदा-मलीदा बना करके, कि जिन पहलवानों की कमर की मंसलौटी, कंधों की चमरौटी नगाड़ों का नाद सुनते ही समुन्दर की लहरों-जैसी लोट लेती थी, उन्हीं पहलवानों का कलेजा मल्लों का नाम सुनते ही ठण्डे पानी में छोड़े हुए गरम कोयले-जैसा चरमराने-छरियाने लग गया !

* * *

आज फिर चारों चाण्डाल गढ़ी चम्पावत नगरी की राज-सभा में कुश्ती खेल रहे थे। राजा कालीचन्द की सातों रानियाँ उनको चँवर

झुलाने, पानी पिलाने की चाकरी में लगी हुई थीं और राजा कालीचन्द तथा उसकी बावन होरों की राज-सभा के दीवान-सरदार उनकी तेल-मालिश में लगे हुए थे, कि चारों चाण्डाल राजमाताओं को छेड़ने लग गए, कि—"एहो, सुंदरियो ! तुम्हारे हाथ के ताम्र-कलशों का जल पीते हैं, तो हमारे कण्ठ अघाते नहीं हैं, कि तुम्हारी ताम्रवर्ण-मुखाकृतियाँ और तुम्हारे कुसुमिया गातों की लोच-लचक देखते हैं; तो हमारी आँखें अघाती नहीं हैं !···सुनो हो, सुन्दरियो ! कहने को तो कथुवा स्वामी तुम्हारा, यह हमारा कलुवा चाकर राजा कालीचन्द है, मगर असली स्वामी तो तुम्हारे हम चार भाई मल्ल ही हुए, कि ताम्र-कलशों का जल तो तुमने खूब पिलाया, कि चँवरगाई की पूँछ का चँवर तो तुमने खूब झुलाया, मगर अब अपने आँचल-कलशों का अमृत कब पिलाओगी, कि अपनी शीशलटी का चँवर कब झुलाओगी ?···कि, तुम्हारा रूप-सिंगार देखते हैं, तो हम चारों भाइयों का चित्त चलायमान होता है !···"

ओहो रे, चौरस्ते के चमार, हुड़क्यानी के यारों-जैसे चाण्डाल मल्ल खिल-खिलखिलखिलाते हैं, कुवानी बोलते हैं, कि लाज से शीश झुकते हैं, कान कलपते हैं !···कि, जैसे धान-गेहूँ के खेतों में कँटीला उपजता है, ऐसे ही, पंचनाम देवों के भभूत-गोलों से कुजात-कपूत मल्ल उत्पन्न हो गए, कि मल्ल-धर्म को भी अब कलंकित करने लग गए, कि कन्या-नारी की असत् कल्पना-मात्र से भी वीर-धर्मी पुरुषों का पौरुष खण्डित-कलंकित हो जाता है !

और ··

जिस डोटीगढ़ी की रुपाली रानी को अपने सत्यानाशी सरूप-सिंगार के आगे आकाश-मढ़ी का सूरज भी धुंधला लगता था, जिस चपला-चंचला-चटुली रानी के लिए राजा कालीचन्द ने मणिहार बुलाए थे, मणिहारकोट बसाया था, कि सुनार बुलाए थे, सुनारकोट बसाया था और धोबी बुलाए थे, धोबीघाट बसाया था, कि मंगलहाट का बाज एकखण्डी महल बनाया था—आज वही एकखण्डी महल की

रानी रुपाली मल्लों को ताम्र-कलशी का जल पिलाते-पिलाते, मोरपंखी-चँवर झुलाते-झुलाते गात की छीन, मन की मलीन पड़ गई !...

कि, जिस रुपसी रुपाली रानी की कलाइयाँ गोरी गंगा की लहरों में लिलुरती-हिलुरती मछलियों-जैसी मणिहारों को परचेत कर देती थीं; कि हस्ति-दंतों की चूड़ियाँ कभी किसी अँगुली में पहनाते थे, कभी किसी अँगूठे में—आज उसी कमल-नाल को मात करती कलाइयों वाली रानी रुपाली की बाईस जात के तेलों की सिंचाई खाने वाली लटी का रेशमी घमेला पकड़के खींच लिया, कि—"एहो, रानी रुपाली ! अपनी सौतों में से तू कंकरों के बीच के मोती-जैसी अलग ही दिखाई पड़ती है, कि आज तेरा कथुवा स्वामी और हमारा कलुवा चाकर राजा कालीचन्द ठीक से मालिश के हाथ नहीं मार रहा है, तो इसे हम दण्ड यह देते हैं, कि यह कल से आधी दाढ़ी, आधी मूँछ लेकर हमारे अखाड़े में आया करेगा !... और तू अपनी हल्दिया हथेलियों से आज हमारे गात सुरसुरा दे, कि हम तेरे केशरिया-कपोलों को सुरसुराएँगे !"

एहो, जब कण्ठ सूखता है, तो जल की कलशी याद आती है, कि जब विपदा पड़ती है, तो परमेश्वर याद आते हैं और जब करनी के फल भुगतने पड़ते हैं, तो अपने पुराने पाप याद आते हैं, प्रायश्चित्त के लिए मन कलपता है। आज गात की चपला, आँख की चंचला और चरित्र की चटुली रानी रुपाली को भी बाईस भाई बफौलों के मीठे वचन याद आने लगे, कि गढ़ी चम्पावत के लाड़ले पूत क्या बाल-वचन बोलते थे—राजमाता, हम तुम्हारे शीश को चँवर झुलाएँगे, चरणों को दण्डवत सौंपेंगे !

गाई को लात भार थी, तो आज कसाइयों के हाथ पड़ गई, कि चार चाण्डालों की चक्की-पाट-चौड़े हथेलों की रगड़ से आज रुपाली रानी के केशरिया-कपोलों की सोनपीत-परत उतरने लग गई ! बाईस-बाईस कंघियों से सुलझने वाली लटी के सुनहले-बाल उखड़ने लगे, रानी रुपाली का कुसुमिया-शीश दुखने लग गया—"हे राम, हे प्रभु ! हे राम,

हे प्रभु !"

बावन होरों में ऊँची चौकियों पर बैठने वाले दिवान-सरदारों में से कई लोग गरज उठे—"बस करो, रे अन्यायी मल्लो ! और अधिक पाप के घड़े मत भरो, पंचनाम देवों के माथे पर कलंक के टीके मत लगाओ !"

एहो, धरम के वचन सुनने से पापी मल्लों की क्रोधाग्नि और ज्यादा भभक उठी, कि—"चुप रहो, रे गढ़ी चम्पावत के कुकुरो ! एक वचन बोल गए हो। दूसरा बोलोगे, तो आँखों को सिर की गुद्दी के भीतर और जीभ को गरदन के भीतर हाथ डालकर खींच देंगे !...अरे, ऐसे ही पुण्यात्मा गढ़ी चम्पावत के सरदार, सेनापति हो तुम, ससुरो, तो आओ ! आओ, हमारे साथ कुश्ती खेलो, कि हम तुम्हारी रानी के केशरिया कपोलों की गुदगुदी बिसार देंगे, तुम्हारे रुण्ड-मुण्डों का खेल खेलेंगे !"

*   *   *

एहो, ऐसे चार चमार चाण्डालों की चौकड़ी बैठी गढ़ी चम्पावत नगरी में, कि चार मन का कलेवा, आठ मन का भोजन करते हैं, कि अठारह गज के टोपे, बावन गज के चोले पहनते हैं। काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ की प्रजा ने हल की मूठों के साँचे अपनी हथेलियों पर उतार-उतार कर जिन अन्न-बालों को उपजाया, उनका विध्वंस करते हैं, कि सारे कुमाऊँ खण्ड में ऐसा अन्यायी राज चल रहा है चाण्डाल-चौकड़ी का, कि जिस धरती-माटी का अन्न खाते हैं, उसी के राजा को चाकर, उसी की राजमाताओं को चरण-दासी बनाते हैं !

...ओहो रे, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा तो हाहाकार करती थी, आज चपला रानी रुपाली भी विलाप करने लग गई, कि—"एहो, विधाता ! अपने पापों का फल बहुत भोग लिया, अब तो अन्त करो, कि बाईस भाई बफौलों का वंश-नाश किया था, तो आज मेरे ऐसे कुदिन आ गए हैं, कि तुम्हारी गढ़ी चम्पावत रानी को ये चार चाण्डाल

हुड़क्यानी-मिसरानी की तरह छेड़ रहे हैं !—हे, राम ! हे, परमेश्वर ! हे, राम ! हे, प्रभु !"

हरि, हे हरि !

गढ़ी चम्पावत की बावन होरों की राज-सभा के पराक्रमी सेनापति-सरदार भी बालकों-जैसे बिलबिलाते हैं, कि—"हे परमेश्वर ! हे, प्रभु !"

दया-धरम और विद्या के धनी जोशी विज्ञानचन्द्र भी टुल-टुल आँसू गिराते हैं, कि—"हे, शिवशंकर ! हे, विधाता !"

और छत्रधारी-खड्गधारी राजा कालीचन्द भी परदेश की यात्रा में लुटे हुए मुसाफिर-जैसा विलाप करता है, कि—"हे, राम ! हे, प्रभु ! हे, राम ! हे, प्रभु !"

हरि, हे हरि !

राम, हे राम !

ओहोरे, परलोक-परचेत-जैसा हुड़क हाथ में लिए गढ़ी चम्पावत की राज-सभा का हाहाकार क्या देख रहा है, रे रमौलिया ?

मार तो जरा पमपुकिया-थाप हुड़क-पुड़ी पर, कि जरा अपने कथा-स्वामी बाईस वफौलों के वंश-सूरज अजित वफौल के बल-विक्रम को भी अपने मुख के आँखर दे तो, कि यहाँ चार चाण्डालों की चौकड़ी अन्न-वालों का विध्वंस और राजमाताओं का अपमान कर रही है, कि उधर महरगों की माटी में वफौलवंशी-बालक कैसे अपने वंश की वीरधर्मी-परम्परा को उजागर कर रहा है ?

33

वीरवंशी पूत और तेलकुट नगाड़ा

अपने माकोट (ननिहाल) महरगाँव में, लली का लाड़ला पूत चमत्कारी पराक्रम दिखा रहा था, कि उसके नाना टुन महर ने नदी के किनारे की पनचक्की में घटवार बनाकर, पिसाई उघाने के लिए भेजा, तो लोगों को गेहूँ-मडुवा कहाँ पीसने देगा अजित बफौल, कि चौमनिया घट-पाटों[1] की गुट्टियाँ खेलने लग गया !

अहारे, देखने वालो !

काजल-रीती आँखों से न देखना बाईस भाई बफौलों के वीर बालक अजित को, कि मध्यमा-अँगूठा मिलाता है, अँगूठी का आकार घेरता है,

1. पनचक्की के चार मन के पाट।

कि मध्यमा अँगुली के सिरे से दोनाल वन्दूक की जैसी चोट मारता है, तो एक घट-पाट को दूसरे घट-पाट से टकराता है ! लोग हाहाकार करते टुन महर के पास जाते हैं, कि—"एहो, महर जी ! आज किस महादैत्य को घटवार बनाके तुमने भेजा है, कि वह गेहूँ-पिसाई कहाँ करने देगा, घट-पाटों की गिट्टी-खिलाई कर रहा है, कि हम अन्न के वोरे उसी की शरण छोड़ आए हैं, कि कहीं वह हमारी ही पिसाई न करदे !"

अहारे, घट की घटवारी छुड़ाता है, टुन महर, कि जब से यह दूधकेला अभागिनी का कपूत उपजा है, तब से घट की भाग आनी भी वन्द हो गई है, कि अब इसका पर्वत-जैसा पेट हम कैसे भरेंगे ?

अपने नाना टुन महर की बातें सुनता है, तो वफौलवंशी-वालक मुल-मुल मुस्कुराता है, कि—"बुबू, बुबू ! आपकी पोपली मुंखड़ी से निकले वचन मेरी समझ में ही नहीं आते हैं, कि, शायद, नटौरे-जैसे मार-मारकर मेरी दीठ उतारते रहते हैं ?"

और 'बुबू, मेरे बुबू !' पुकारता, अजित वफौल टुन महर की पीठ पर सवार होने लगता है, कि एक ही धचके में टुन महर एक पहर तक के लिए परचेत हो जाता है, कि चेतता है, तो फिर मसूर की दाल-जैसी दलता है—अरे, बाईस भाई वफौल तो चले गए, मगर एक यह वाईस कपूतों का एक कपूत मुझको सताने को छोड़ गए !

और टुन महर ने क्या प्रपंच रचा, कि वारह विसी गाय-वकरियों का ग्वाला वनाकर, लली दूधकेला को वाँजवनी-घाटियों-चोटियों पर फिरने को भेज दिया, कि—"सुन हो, लली दूधकेला ! तेरे इस दुष्ट पूत ने सारी महर-पट्टी में त्राहि-त्राहि मचा दी है, कि अच्छे-अच्छे पहलवानों को आँखों का काना, हाथ-पाँवों का लूला वना देता है, यह तेरा वाईस हाथियों का एक हाथी-जैसा जवरजंड पूत !—'हो गया, मीत, भर पाया !' वाली कहावत अब मेरे सामने भी आ गई है । अब तो, लली, तू अपने इस लाड़ले को हमारे महर गाँव से जरा दूर ही रख । वारह विसी गाय-वकरियों का ढाँकर है हमारा, इसको वाँज-वाँज-फँल्यांट के घने वनों में

ले जाओ तुम माँ-बेटे और छाछ पीके पेट पालना, नौनी जमाकर के हमारे लिए भेज देना।"

और बारह बिसी गाय-बकरियों का ढाँकर विकट वनों में लेजाकर, अजित बफौल ने क्या कौतुक किया, कि वन-मृगों को पकड़ने लगा, और गाय-बकरियों का दूध-दही तथा वन-मृगों की बोटियाँ खाने लगा, कि खड़मासों की खिचड़ी खाते-खाते रूखी पड़ी हुई उसकी देह दिन और, रात और, चुपड़ी-चमचमान होने लगी, कि उसकी देवदार-जैसी काया बाँस-ऊँची, काँस चौड़ी होती चली गई।

लली दूबकेला सरसों-तेल का हाथ फिराती थी, कि अजित की बाँहों में लुढ़कते चमलोढ़े रामगंगा-किनारे के गंगलोढ़ों को मात करते थे, कि हाथ फिसलता था, लली दूबकेला का हिया हरसता था, कि—पूत मेरा स्वामियों पर ही उतर रहा है!

अहारे, बल-विक्रम के बाँके, करतबों के धनी वीरवंशी बालक अजित बफौल ने एक महीने-भर बारह बिसी गाय-बकरियों का ढाँकर जंगल-घाटियों में चराया और बावन बिसी वन-हिरन घुरड़-काँकड़ और थारों का शिकार किया, कि उनके हाड़ बड़े-बड़े बोरों में भरकर, सहेज कर रखे।" और एक दिन क्या बालक-करनी करी, कि लली दूबकेला को हिसालू-घाटी की कुटिया में सोई छोड़—सीधे अपने नाना हुन महर के महर गाँव में पहुँच गया। आगे-पीछे उसके जंगल के ढोरों का ढाँकर चल रहा था, कि सारी महर-पट्टी में चारों ओर एकदम हाहाकार होने लग गया, कि 'आज हुन महरों के वंश-उजाड़ की वेला नजीक आ गई है, कि बाईस भाई बफौलों का कपूत अजित बफौल उनके जंगलों के जंगली ढोरों का ढाँकर लिए, महर-पट्टी पहुँच गया है!'

"एहो, मुखिया हुन महर जी! एहो, नाना हुन महर जी!"

…ओहोरे, हुन महर के घर-आँगन में महर-पट्टी के महरों का मेला जुड़ आया, कि 'एहो, मुखिया हुन महर जी! क्या करें, तुम कहो, कि आज तुम्हारा अत्याचारी नाती जंगल के ढोरों का ढाँकर [illegible] के

आया है, कि अब जंगल के शेरों की विकराल दाढ़ों के बीच से एक भी महर साबित नहीं निकलेगा !'

टुन महर ने देखा, कि अजित बफौल ने दूर से ही वन-मृगों के हाड़ों से भरे बोरे उसके आँगन में फेंक दिए, कि उन हाड़-भरे बोरों को देखते ही, टुन महर मुँह से गाज-जैसा छोड़ने लगा, कि—हे भगवान्, यह अन्यायी विकट वनों में जाएगा, तो जंगल के शेर इसे अपने आप खाएँगे, यह सोचकर, मैंने इसे विकट वनों में गाय-बकरियों का ढाँकर चराने भेजा था, मगर यह वंश-में का-वज्रदंती-जैसा शेरों का ढाँकर साथ साथ लगा लाया है, ! इसने और इसके पीछे लगने वाले कुत्ते जंगली शेरों ने मेरा बारह बिसी गाय-बकरियों का ढाँकर खाकर उजाड़ दिया है और यह करम-चण्डाल बोरों में भर-भर के मेरी बारह बिसी गाय-बकरियों के हाड़ मेरे हिया में चिता-जैसी धधकाने को ले आया है !

···चिमड़िया गात, चिमचिमिया नेत्रों वाला बूढ़ा टुन महर क्या कुमति की कल्पना करने लग गया, कि खैर, बल-विक्रम में तो इस अन्यायी बफौल-पूत को वश में कर पाना कठिन ही है, मगर कहाँ इसकी दुधिया-वय, बालक-बुद्धि और कहाँ मैं बाल-फूला, गात-भूला सौ वर्षों का समय देखा हुआ टुन महर, कि मेरी वृद्ध-बुद्धि के बाँके प्रपंचों के आगे इसका वश कहाँ चलेगा ?

अनार-फूल फूलता है, फलता है, तो चखने वाले की रसना मिठास से लटपटाती रह जाती है, कि एक फूल धतूरे का भी फूलता है, फलता है, विषैले बीज देता है, कि जिनको चखने से लाल अधर काले पड़ जाते हैं !···

कि, एक ऐसा धतूरे-जैसा फूला अन्यायी बूढ़ा टुन महर, कि सर्वनाशी सफेदी से श्मशान-घाट की शोभा बढ़ाने वाले सिर को लखुवा बाई की लपेट में आया हुआ-जैसा हिलाने लगा, कि "उसी बाँस की बाँसुरी है और उसी बाँस का लट्ठा, उसी दूध का दही है, उसी दही का मट्ठा !..."

विपरीत बुद्धि का टुन महर बूढ़ा गिद्ध-जैसी लमथुरिया गरदन

हिलाते हुए क्या सोचने लगा, कि—(द, गरदन-तोड़ अनियारकोटी आँधी उसी दिशा से गुजरे, जहाँ से टुन महर आखिरी नरसा में पहुँचे हुए पागल हाथी-सा आगे-पीछे चलता हो!)—उन्हीं वचन-बाँकुरे बाईस भाई बफौलों का ही वंशधर तो है, यह अजित बफौल भी, कि जो पर्वत-जैसे ऊँचे-गहरे वचन देते थे, तिल-भर भी पीछे नहीं हटते थे, कि जिन्होंने पंचनाम देवों के मंत्र-गुरु चार भाई मल्लों को नहीं चम्पावत के दिशा-द्वारों का दरबान बनाया था?…कि, इसमें भी तो वही बफौलिया-बाँकपन जनम-संस्कार का होगा, कि पंगों के पितर जनम-संस्कार अपने वंशजों में छोड़ जाते हैं, कि मरण-संस्कार अपनी मिट्टी के साथ ले जाते हैं!…तो आज इस बफौलवंशी-निजवार से अपना बैर ऐसे निकालूंगा, कि शेरों का डांगर हाँकने वाला यह कपूत खाट के खटमल की मौत मरेगा!…

* * *

“क्यों हो, बुबू? मुझे देखकर, एकदम सोच-विचार में जैसे क्या पड़ गए हो?”—आँगन-पथरौटों को चरमराता अजित बफौल बोला—“इन शेरों के डांगर को देखके मत चौंकना हो, बुबू, कि इन्हें तो मैं यहाँ सिर्फ इसलिए फिराने को लाया हूँ, कि जरा आपको भी मालूम हो, कि बफौलवंशी-बालक कैसे डांगरों को चराया करता है! और, हो मेरे महर बुबू…”

दरे, टुन महर की अर्थी को कंधा लगाने वाले कठैत्यों को प्यास लगती वेला पानी, भूख लगती वेला अन्न-दाना न मिले, कि सत्यानाशी बुड्ढा कैसे दुष्ट वचन बोलने लगा—“हट्, बफौल-कुल के कायर कपूत! अपने इस कायर-कलंकी मुँह से मुझे अब बुबू-बुबू मत कहाकर, कि आज तक तो तुझ कुजात की बातों को बालक समझकर सहन करता रहा!…अरे, ‘बफौलवंशी-बफौलवंशी’ चिल्लाकर, अपनी छाती को

फुग्गे-जैसा फुलाने वाले कपूत !···अगर, तुझमें जो वाईस भाई वफौलों का रक्त-बीज होता, तो तू अपनी माता लली को वन-वन भटकाता, जंगली कुत्तों का ढाँकर फिराता अपनी कलंकी सूरत मुझे दिखाने यहाँ मेरी महरपट्टी में नहीं लौटता !···अरे, मेरी वूढ़ी देह को तो तू अपनी साँड-सींगों-जैसी आँखें दिखाएगा ही, मगर जात-औकात का होता, वफौलों की वीर-प्रसू-वंश-वेलि का सच्चा फल होता, तो गढ़ी चम्पावत नगरी में जाकर चार भाई मल्लों को आँखें दिखाता, कि जिन्होंने तेरे जनमदाता बाईस भाई वफौलों के हाथों पराजय का वैर सारी काली-कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा से निकालना शुरू कर रखा है, कि घर-घर में त्राहि-त्राहि मची हुई है !···होता वफौलवंशी तू, तो मुझ सौ वरस के बुड्ढे को सताने की जगह, गढ़ी चम्पावत के राजा कालीचन्द और रानी डोटियाली से अपने पितर वफौलों का वैर चुकाता !···ले, मारता है ? मार मुझ बुड्ढे को और क्या पराक्रम हो सकता है, तुझ कायर-कपूत से ? लाज ही तुझे होती, तो आज तेरी पितर-धरती वफौली-कोट ही वंजर नहीं पड़ी रहती, कि वफौलों के गोठों की गाय-बकरियों का ढाँकर घास-चारे के बिना नहीं उजड़ता, कि अजरगूंठ अश्व की पीठ पर कौवे सवारी नहीं करते !···मगर, तू कपूत क्या करेगा ? तू यहाँ के विकट-वनों में फिर, मौज कर ! और ले, आ, मुझ बुड्ढे गहर की वृद्ध-हत्या का पातक और अपने सिर पर ले ले, कि तेरे वीरधर्मी वफौल पितरों की परिपाटी ऐसे ही उजागर होगी !"

हरि, हे हरि !

टुन महर के वचन-वाणों से विंधता वफौलवंशी-वालक आँगन में खड़ा, क्रोध और अपमान के आक्रोश से तिलमिलाता पथरौटों को पाँवों से पीसने लगा, कि जेठ-दुपहरी की धूप में धरी ताँवे की कलशी-सी तमतमाई उसकी मुखाकृति की रक्तवर्ण छवि वन-फूलते बुरूँशों, खेत-फूलती रतंगियाली की वेल की रंगत को मात करने लगी, कि उसके हाट की कालिका मैया के मंदिर के गोल गुम्वद-जैसे सूर्याकारी मुण्ड की

परात-चौड़ी चुटिया के बालों से लेकर, केले के सपसपे खम्भों को मा करने वाली पिंडलियों तक वीरवंशी-रक्त उबाल खा गया, कि—ताम्राधारी चाम्रपुड़ी का तेलकूट नगाड़ा सानगु-सोंटों की चोटों से गरजता है, पर वीरवंशी-पूत की मंसलोटी-चमरोटी में मामूली-सी बातों की ही चोटों से काली-धौली नदियों की मट्टिया-लहरों को मात करता रग-बांकुरा रक्त उछाल मारने लगता है, कि—"एहो, मेरे प्यारे बुबू टुन महर ! तुम्हारी सौ वर्षों की वृद्ध काया हजार वर्षों तक सुजियारी रह जाए, कि तुमने मुझ वफौलवंशी की सोई आत्मा को जगा दिया है, कि मेरा कर्त्तव्य मुझे सुझा दिया है !···एहो, मेरे बुबू टुन महर जी, तुम्हारे वरदानी वचनों को गाँठ बांधता हूं, कि मैं अब आज ही अपनी पितर-थात वफौलीकोट की धरती की धूलि का अभिषेकी-टीका अपने माथे पर लगाने को प्रस्थान करूँगा, कि तुम आज से अपनी महरपट्टी में कांसे के पनौटे की चिलम को सुख से गुड़गुड़ाना !···और मेरे बालक-स्वभाव के कारण जो-कुछ भी परेशानियाँ उठानी पड़ी हैं, उनके लिए भूल-चूक की माफी देना, कि लाख उत्पाती था, मगर आपकी ही गोदी मे खेला बालक हुआ, सो आपके आशीर्वाद का अधिकारी हूं !·· मेरे प्रणाम लो, हो मेरे महर बुबू, कि अब मैं तुम्हारे चरन छूने तभी आऊँगा, जब अपने पितरों का वैर चुकाऊँगा !"

अहा रे, वंश-अटारी पर बलता दीपक-जैसा अजितं वफौल हिंसालू-घाटी को प्रस्थानमुखी हो गया, कि सच्चे सपूत पितरों की आन-बान के लिए अपना सर्वस्व होम देते हैं, कि कायर-कपूत उनका नाम बेचते हैं, अपना पेट पालते हैं और चौरस्ते के डोली कुत्तों-जैसे मर जाते हैं, कि—सच्चे सपूत का नाम आता है, तो होठों पर लाख की बोली 'अहारे, वीरधर्मी !' आती है, कि कायर-कपूत के नाम पर थूक की गोली बनके रह जाती है !

34

श्मशान-जाते बुड्ढे की विपरीत-बुद्धि

द, रे !

तुझ अन्यायी टुन महर की चिलम के काँस्य-पनौटे में डेढ़इंची-छेद पड़ जाए, कि जिस चमरिया-चिलम में तमाखू गुड़गुड़ाते-गुड़गुड़ाते तुझ सत्यानाशी बुड्ढे की बुद्धि ऐसी विपरीत हो गई, कि वफौलवंशी-वालक 'एहो, मेरे महर बुबू !' कहकर, प्रणाम सौंप गया, तो उसे पितरों के मुख की शोभा को बढ़ाने और वालकों की कुसुम-काया को सुखी वनाने वाला आशीर्वाद 'दीर्घजीवी हो, वफौलवंशी बेटे !' कहाँ से देगा, कि श्मशान-घाट के कफन-चोरों की जैसी कुटिल मुस्कुराहट अपने हड़कुला होठों पर ले आया, कि—ठहर, रे वफौलवंशी वमकुवापूत ! तू मेरे चरन छूने को क्या लौटेगा अव इस महरपट्टी में, कि तेरी दाड़िम की जैसी खटाई वनवाने का वन्दोवस्त अभी करता हूँ !

और—द, रे ! तुझ वुड्ढे की चिता जब चिनी जाए, तो उसमें लगाई गई लकड़ियों को आग नहीं पकड़े, कि तेरी खाली किए हुए कुथलों-(वोरों) जैसी चिमड़िया-काया चील-कौवों के हाथ पड़ जाए, कि तेरे श्राद्ध के पिण्डों के चावलों में लमपुछिया कीड़े पड़ जाएँ !—अन्यायी वुड्ढे ने महरपट्टी के सात कपूत चार चाण्डाल मल्लों के पास दौड़ा दिए, कि उनके हाथों कैसी कुआँखर-भरी पाती भेजी, कि—द, रे ! जब तू अन्यायी वुड्ढा मरे, तो सात दूत ऐसे ही महाराजा यम के दरवार में भी तेरे नाम की करम-पाती लेकर पहुँच जाएँ, कि 'एहो, धरमराज जी ! यह अन्यायी वुड्ढा आशीर्वाद के अधिकारी वालकों को कफन-चोरों की जैसी कुटिल गालियाँ देता था, कि नरक-लोक में इसकी चमड़ी को चून-चून दँतियाली-चिमटियों से नुचवाना !'

एहो, श्मशान-जाते वुड्ढे की विपरीत-वुद्धि से कैसे कुआँखर निकले, कि—"एहो, पंचनाम देवों के मंत्र-पुत्र चार भाई महामल्लो ! महरपट्टी के मुखिया दुन महर की जैराम जी की लेना, कि मैंने ये सात जोलिया महर तुम्हारी सेवा में भेजे हैं, कि इनकी दण्डवत लेना और मेरी इस पत्री के आँखरों पर ध्यान देना !...राजा कालीचन्द की वावन होरों की राज-सभा में अखाड़े वाजी करने में ही मत त्रिलमे रहना, कि आज तक निगरगंड रहे हो, मगर भविष्य के लिए चेतना !—कि, जिन वाईस भाई वफौलों ने तुम्हें गढ़ी चम्पावत के दिशा द्वारों का दरवान वनाया था, कि उन्हीं के वंश का रण-वाँकुरा वालक अजित वफौल आज हमारी महरपट्टी छोड़कर, वफौलीकोट की पितृ-भूमि को प्रस्थान कर गया है, कि 'वफौली कोट जाकर, अपने पितरों का वैर चुकाऊँगा ! चार भाई मल्लों को वावन होरों की राज-सभा से निकालकर गिरिखेत की मैदानी मिट्टी में खाड़ दवाऊँगा, कि ऊपर से चौंरिया-झौंरिया वैलों की जोड़ी जोतूँगा, कि चार भाई मल्लों के पर्वत-जैसे शरीरों का हाड़-माँस गिरिखेत के खेतों में खाद-मैल का काम देगा !'...सुनो हो, चार भाई मल्लो ! अभी तो वह वालक ही है, कि उसके पैर टिकाए से पथरौटे चरमराते हैं, कि उसकी क

की मंसलौटी, कंधों की चमरौटी में गंगलोढ़े-जैसे लुढ़कते रहते हैं, कि उसकी पिण्डलियाँ वेलपट्टी के मुँगरिया केलों के खम्भों को मात करती है !···और, जिस दिन अपनी तरुणाई पर आ जाएगा वह बफौलवंशी-बेटा, तो फिर कहाँ तुम लोग उसके बल-विक्रम से पार पाओगे, कि बाईस बफौलों का एक बफौल तुम्हारा जनम-वैरी बफौलीकोट में पितर-थात सँभालने चला गया है, तो तुम्हारा वंश-बीज उजाड़ के ही सुख की नींद सोएगा, कि बफौलवंशियों की उम्र संकल्प के आँखरों को ही समर्पित रहती है !···सो, महरपट्टी के मुखिया दुन महर की पाती के ये आँखर ध्यान में धर लेना, कि लगती-आग, और बनते-दुश्मन को उसी समय नेस्त-नाबूद कर देना चाहिए, कि फिर भभकी हुई आग और बलवान बने शत्रु को वश में कर पाना बहुत कठिन होता है !····बाकी क्या लिखूँ, आप लोग खुद समझदार हैं !"



35

पितरों की थाती, पूत के पैर

इन महर के आँगन से लौटा अजित वफौल सीधे हिसालू घाटी में सोई अपनी माँ लली दूबकेला के पास पहुँचा—"उठ, ओ माँ ! महरपट्टी के वनों में तूने मुझे बहुत खेल लगाया, अब मेरी पितृ-भूमि वफौली कोट को ले चल मुझे, कि मैं अपने पिताश्री वफौलों की सूनी थाती को फिर से संवारूँगा।···चल, ओ माँ ! मेरी रगों का वफौलवंशी-रक्त चौमास की काली गंगा की तरह छलार लोट लेता है, कि अब तो तब तक मैं सुख पलक नहीं लगाऊँगा, जब तक पितृघाती राजा कालीचन्द और उसकी रानी डोटियाली की एक चिता नहीं चिनूँगा, कि मेरे वफौल पिताश्री के हाथों दिशा-द्वारों के दरवान बने अत्याचारी मल्लों को मिट्टी में नहीं मिलाऊँगा !"

लली दूधकेला औचक अपने बफौलवंशी-पूत की तमतमाई मुखाकृति देखती ही रह गई, कि 'आज मेरे लाड़ले का आँचल-लगते समय का सोया-संकल्प किसने जगा दिया ? वन-वन भटकती रही, भाई-भाभियों के दुर्वचन सुनती रही, मगर बफौलीकोट को नहीं लौटी, कि कहीं डोटियाली रानी और मल्लों की कुदृष्टि न पड़ जाए मेरे अजित पर। मगर, आज न-जाने कौन वैरी जनम गया मेरा महरपट्टी में, कि मेरा दुधिया-पूत लाल अँगारा बना बफौलीकोट की दिशा पूछ रहा है !··· हे भगवान, जिन चार अन्यायी मल्लों ने सारी काली कुमाऊँ-पाली पछाऊँ के पहलवानों को चरणों का चाकर बना दिया है, उनसे मेरी गोदी का यह दुधमुँहा बालक क्या टक्कर लेगा, कि अभी भी जिसकी पलक बिना सिर में ठुंग मारे, बिना 'हिल्लुरी पोथी, हिल्लुरी, हिल्लुरी' कहे नहीं लगती !'

आज लली दूधकेला गात की दुबली, मन की मलीन पड़ गई, कि—"सुन हो, मेरे लाड़ले पूत ! अभी कुछ समय और तू मेरे साथ विकट-वनों में अपनी बालक-अवस्था बिताले, कि जिस दिन तेरी भुजाओं में तेरे पिताश्री बफौलों की लुवासार गुलेल के पटेल-प्रशस्त पलड़ों को खींचने की सामर्थ्य आ जाएगी, तो मैं तुझे स्वयं ही बफौलीकोट को ले चलूँगी। मगर, मेरे लाल, अभी इस लोरी सुनकर सोने, लाड़ से खिलाने पर ग्रास ग्रहण करने की कौंली उमर में बफौलीकोट की दिशा मत पूछ, कि बाईस सिर-छत्रों को खोकर प्राण दे रही थी, तो एक तूने ही आँचल से लगकर मुझको चिता-चढ़ने से रोका था, मेरे बफौलवंशी !"

"रोका तो था, माँ !" बफौलवंशी बेटा लली के और निकट पहुँच गया—"मगर, मैंने यह कब वचन दिया था, कि कायर-कपूत की तरह तेरे साथ वन-वन भटकता फिरूँगा और अपने पिताश्री के वैरियों के भय से अपनी पितर-थाती बफौलीकोट की दिशा नहीं जाऊँगा ? कब ऐसा वचन मैंने तुझे दिया था, माँ, कि मेरी बफौलीकोट की पितर-थाती उजड़ती रहेगी और मैं महरपट्टी के अन्यायी महरों का दिया हुआ

टुकड़ा खाकर, कुत्ते की तरह अपना पेट पालूंगा ?…मेरी लाड़ली माँ, मैंने तो तुझे वचन दिया था, कि जिस रानी डोटियाली के कारण तेरे सिर-छत्रों की छाया लोप हुई है, उसे तेरे चरणों की दासी बनाऊँगा, कि जिस अन्यायी राजा कालीचन्द ने मेरे निर्दोष, धैर्य-धरम के धनी पिताजनों को विश्वासघात करके मारा, उसको आधी दाढ़ी-मूंछों का मेहतर बनाकर गढ़ी चम्पावत नगरी की प्रदक्षिणा उससे करवाऊँगा, कि मेरा पितृघाती राजा कालीचन्द मनुष्य-योनि में आए हुए गधे की तरह बफौलों को सताने का दण्ड भोगेगा !… और, मेरी मैयारी, जो पूत अपनी माता को दिए हुए वचनों को पूरा नहीं करता, उसका मुँह देखने से भी पातक लग जाता है, कि तू कैसे मेरा कायर-कलंकी मुँह देखती रहेगी ?"

ओहो रे, लली के लाड़ले पूत ने अपनी विशाल भुजाएँ अपनी माता के चरणों पर टेक दीं, कि—"मैया री, मुझे और दिशाओं को फेरकर अपने आँचल के अमृत और बफौलवंशी-रक्त को मत पानी से भी पतला होने दे, कि मेरे माथे पर अपना वरदानी हाथ धर, और आशीर्वाद दे, कि मैं तुझे दिए वचनों को पूरा करके सुख की पलक सो सकूं !…अपने आँचल की छाया आज मेरे सिर पर इतनी घनी करदे, माँ, कि मैं तेरा ऋण उतारे बिना जिऊँ, तो कुत्ते की मौत मरूँ ! और, माँ मेरी, ले चल मुझे मेरी पितर-थाती बफौलीकोट में, कि मेरा अजरगूंठ अश्व अपनी पीठ पर बैठने वाले कौवों को पूंछ से उड़ाता मेरी बाट जोह रहा होगा और लुवासार गुलेलों के पलड़ों के बारहबिसी के गोसे कसमसा रहे होंगे, कि कब कोई बफौलवंशी इस बफौली कोट में आएगा और हमको खेल लगाएगा !…मैया री, मेरे नाम पर रीते पड़े हुए बाईस पंचसेरा कटोरे अभी तक रीते ही पड़े होंगे, कि उनमें दूध भरने को बफौलवंशी सुमंगला लली मैया कब बफौलीकोट लौटेगी; कि तेरे हाथों की ताम्र-कलशियों की जल-धार पाने को आँगन की तुलसी बौरा रही होगी, और तेरे हाथों की तेल-बाती पाने को अटारी के बुझे हुए दीपक कसमसा रहे होंगे, कि तेरी भरपूर भण्डारी हथेलियों का स्पर्श पाने को

थाती वफौलीकोट के वफौलखण्डों की पिटारियों में पड़ा वैभव विकल हो रहा होगा। तेरे पीसे हुए चावलों के मेरे हाथों से बाँटे जाने वाले श्राद्ध-पिण्डों को पाने के लिए हमारे पितर वफौलीकोट में भटक रहे होंगे, मेरी लली माँ, कि गोठ की गैया रंभाती होगी, 'लली मैया कहाँ ? वफौल वंशी-वेटा कहाँ ?' पुकारती होगी और खेतों की रीती मिट्टी रोती होगी, तो 'लली मैया कहाँ, उसके हाथों की दातुली-कुटली का प्यार कहाँ ? वफौलवंशी कहाँ, उसके हाथों की हल की मूठ कहाँ ?' विलखती होगी, और···"

···और आज हिसालू घाटी में, अपने पराक्रमी पूत के बाँके वचन सुनकर, लली दूधकेला का हिया हर्ष से हिलुरता है, कि आँचल की घनी छाया देने में, आँखों के असाढ़-मेघों को मात करने वाले ममता के वादल भी वरसाती है, कि 'मेरी उमर लेना, मेरे वफौलवंशी ! लाख वरस जीना और अपने पितरों का नाम उजागर करना, मेरे पूत, कि तेरा नाम आने से मेरे आँचल का दूध भी धन्य-धन्य कहलाएगा !'

*　　　*　　　*

ओहो, रे !

आज पितर-थाती वफौलीकोट की धरती पर वफौलवंशी पूत के पाँव पड़ गए, कि उजाड़ वफौल-खण्डों में दीपकों की कतार जल गई संध्या-वेला, कि तुलसी-चौरे में हरियाली छा गई, और अपूजित-इष्टों को पूजा के अक्षत मिल गए, धूप-गंध और नैवेद्य-प्रसादी मिल गई, कि गोठों की गैया-मैया को घर की मालकिन के हाथों के गास क्या मिले, उनके सूखे थनों में दूध उतर आया !

और दूसरी ही भोर···

वन के पंछी चहके, उपवन में फूल महके,

कि, वफौल खण्डों के चिफल पथरौटिया[1]-पटाँगणों में बफौलवंशी-पूत पंचसेरा-कटोरों को रीता करता घूमने लगा, कि आठ फुट चौडे लुवासार गुलेल के चमड़पट्टों को तेल पिलाया, अजरगूँठ की हस्ति-चौड़ी पीठ पर वफौलवंशी हाथ फेरने के बाद, बारह बिसी के गुलेल-गोसों को खेल लगाने लगा।

झरोखों से झाँकती लली दूधकेला अपने महापराक्रमी पूत के करतब देख-देखकर, मुल-मुल मुस्कुराती रही, कि मेरे बाईस सिर-छत्रों का यह एक आँचल-फूल है, कि बारहबिसी मनों के गंगलोढ़िया गुलेल-गोसों को खेल लगा रहा है, कि इसके बल-विक्रम को मेरे आँचल की छाया और पितरों का पुण्य दाहिना हो जाए !

हरि, हे हरि !

राम, हे राम !

पितर-पुण्यों के भागी वफौलवंशी-पूत अजित ने आज बारह वर्षों से सोई उदास वफौलीकोट की धरती के आँचल में मल्ल-किलकारी भरी, कि लुवासार-गुलेल दाहिने हाथ में पकड़ली !

अहा रे, बल-विक्रम का बाँका, ऊँचे करतबों का करय्या अजित वफौल गढ़ी चम्पावत नगरी की ओर दीठ फिराते हुए, बारह बिसी मनों का गुलेल-गोसा लुवासार गुलेल पर चढ़ाने लगा, कि उसकी विशाल बाँहों की छाया बाईस आँगनों को लाँघ गई !

और पितर-थाती के पथरौटे-पटे पटाँगण में जमे हुए वफौलवंशी-पूत ने अपने पाँवों को वीरासन दे दिया, कि वफौल-खण्डों की छतों पर ढीली पड़ी वीर-धर्मी ध्वजाएँ फर-फर फरफरा उठीं, कि खण्डचूल पर बँधा काँस्य-स्वरी घण्टा घनन्-घनन् गगनभेदी-निनाद कर उठा, कि लली दूधकेला ने आँचल में लिए हुए अखण्डित-अक्षत कुल-देवत

1. चिकने पत्थरों वाले।

में समर्पित कर दिए, कि—"लाज रख लेना हो, कुल देवो ! मेरे पूत की लुवासार गुलेल से छूटी बफौल-ढुंगी को अपने वश की बावन बयारों की संगति देना, कि बफौल-ढुंगी गढ़ी चम्पावत की नगर-सीमा से इधर न गिरे, कि मैं अपने इष्ट-पितरों के नाम पर पर्वों को न्यौतूंगी, विप्रजनों को अन्न-वस्त्र बाँटूंगी।"



36

बिना मेघों का वज्र-पात, चांडालों का चमारपना

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए बफौलीकोट की धरती-पार्वती का और बफौलों की वंश-परिपाटी का, कि जिसमें जनमे पराक्रमी-पूत के हाथों की लुवासार गुलेल का बारह बिसी का गोसा कहाँ आकर गिरा, कि बावन होरों की राज-सभा के पार्श्ववर्त्ती मल्लखेत में, कि मल्लों के भस्मासुरी भोजन का अठमनिया चावल-तौला और चौमनिया दाल-कसेरा, दोनों पाताल-लोक में धँस गए, कि अखाड़े में कुश्ती खेलते, राजरानियों से ठिठोली करते चार भाई मल्लों के आकाश को उछलते भुजदण्ड धरती की ओर झूल गए, कि—गगन में मेघ नहीं दिखाई देते, मगर यह राजा इन्द्र का जैसा

वज्र कहाँ से छूटा ?

ओ हो, रे ! आज चारों चाण्डालों की बावन-हथिया मोटी कमरों में धचक-जैसी पड़ गई, कि आज हम चार भाई मल्लों की रसोई में यह बिना बादलों का वज्र कैसे गिर गया ?

"क्यों, रे राजा कालीचन्द ?"—उत्तरिया मल्ल ने राजा कालीचन्द की चुटिया पकड़ डाली।

"क्यों, रे बुड्ढे दीवान जोशी ?"—दक्षिणी मल्ल ने जोशी विज्ञानचन्द्र को अखाड़े में औंधा कर दिया, कि पूर्विया-पश्चिमिया मल्ल सरदार-सेनापतियों को दमोरने-पीटने लगे, कि—"बताओ, रे ससुरो ! आज तुम्हारी चम्पावत गढ़ी में ऐसा चमत्कार क्या हुआ है, कि जो हम चार भाई मल्लों की रसोई पाताल चली गई ?"

राजा कालीचन्द रहती पाणी का गूंगा हो गया, कि सरदार-सेनापति ग्वाल-बालों की तरह टिटियाने लगे, कि—"एहो, हमारे स्वामी मल्लो ! हमारे प्राण क्यों लेते हो, कि ऐसा चमत्कार तो हमने भी आज बारह बरसों के बाद देखा है, कि बहुत पहले जब बाईस भाई बफौल थे, तो···"

अहा रे, बुद्धि-विद्या के भण्डारी दीवान जोशी की आँखों में एक चमक चपला-जैसी कौंध गई, कि उन्होंने सैनों से सरदार-सेनापतियों को बरज दिया और दक्षिणी मल्ल की ओर आँख उठाकर, बोले—"सुनो, हो पराक्रमी मल्लो ! बात पूछते हो, तो पहले प्राण अपनी ठौर रहने दो, कि मुझे जरा मल्लखेत की अपनी रसोई तक ले चलो, कि लक्षण देखूंगा, तब चमत्कार की जड़ बताऊँगा !"

जोशी दीवान को साथ ले, चार भाई मल्ल आगे बढ़ गए, कि अपनी पाताल-पहुँची रसोई का स्वाद याद करते हुए, बोले—"अब बता, रे बुड्ढे ! बता, कि हमारी रसोई के तौले-कसेरे कैसे धरती में धँस गए ?"

जोशी विज्ञानचन्द्र मल्लखेत की धँसी हुई धरती का घेरा नापने लग

गए। धँसी हुई धरती की परिक्रमा पूरी करते-करते, जोशी विज्ञानचन्द्र के होंठों पर एक तोला-भर हँसी हिलुर उठी, कि उनकी आँखों से एक अंजलि-भर आँसू बिखर गए।···कि, बफौलढुंगी को मल्लखेत में गिराने वाला कोई बफौलवंशी ही हो सकता है !···कि, हो, न हो—बाईस भाई बफौलों का वंश-बीज सहेजे लली दूधकेला ही, गाँव-वन भटकती, आज बफौलीकोट लौट आई होगी और बाईस बफौलों के एक बफौल ने ही लुवासार गुलेल के पलड़ों को खींचा होगा, कि बाईस भाई बफौलों का गुलेल-गोसा तो सिर्फ नगर-सीमा तक ही पहुँचता है मगर उसका गुलेल-गोसा मल्लखेत तक पहुँचा है !···· शायद, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा और गढ़ी चम्पावत की बावन होरों की राज-सभा के अदिन अब पूरे हो गए हैं, कि बफौलीकोट में बफौलवंशी लौट आया है !

बफौलवंश की जड़ का पता चलने से तोला-भर हँसे जोशी विज्ञानचन्द्र, कि ज्यादा हँसने से मल्ल अन्यायी रुष्ट होंगे और बाईस भाई बफौलों की सुधि आने से अंजलि-भर आँसू रोए जोशी दीवान, कि मल्लों से क्या वचन बोले—"एहो, चार भाई मल्लो ! इस चमत्कार की जड़ तो मेरी पकड़ में आ गई है, मगर उसे आप लोगों की सेवा में उपस्थित करने तक कुछ समय लग जाएगा ! कुछ समय की मोहलत अगर मुझे मिले, तो मैं गढ़ी चम्पावत नगरी से बाहर जाऊँ और चमत्कार की जड़ लाके आपके सामने रख दूं।··· और, सुनो हो चार भाई मल्लो ! यह चमत्कार और कुछ नहीं है। पंचनाम देवों ने चार गोले भभूत के फोड़े थे, आप चार भाई मल्लों की सृष्टि की थी, कि पाँचवा भभूत-गोला आज आप लोगों की रसोई में फोड़ा है। उन राखधारी-खाकधारी जोगियों को झोली-भर भिक्षा का

गढ़ी चम्पावत में न्यौत लाऊँगा, तब आप चारों

उनको कैलाशवासी और मुझे अपना

नहीं तो उन जोगी-जट्टों का क्या भरोसा

वज्र कहाँ से छूटा ?

ओ हो, रे ! आज चारों चाण्डालों की बावन-हथिया मोटी कमरों में धचक-जैसी पड़ गई, कि आज हम चार भाई मल्लों की रसोई में यह बिना बादलों का वज्र कैसे गिर गया ?

"क्यों, रे राजा कालीचन्द ?"—उत्तरिया मल्ल ने राजा कालीचन्द की चुटिया पकड़ डाली।

"क्यों, रे बुड्ढे दीवान जोशी ?"—दक्षिणी मल्ल ने जोशी विज्ञानचन्द्र को अखाड़े में औंधा कर दिया, कि पूर्विया-पश्चिमिया मल्ल सरदार-सेनापतियों को दमोरने-पीटने लगे, कि—"बताओ, रे ससुरो ! आज तुम्हारी चम्पावत गढ़ी में ऐसा चमत्कार क्या हुआ है, कि जो हम चार भाई मल्लों की रसोई पाताल चली गई ?"

राजा कालीचन्द रहती पाणी का गूँगा हो गया, कि सरदार-सेनापति ग्वाल-बालों की तरह टिटियाने लगे, कि—"एहो, हमारे स्वामी मल्लो ! हमारे प्राण क्यों लेते हो, कि ऐसा चमत्कार तो हमने भी आज बारह बरसों के बाद देखा है, कि बहुत पहले जब बाईस भाई बफौल थे, तो···"

अहा रे, बुद्धि-विद्या के भण्डारी दीवान जोशी की आँखों में एक चमक चपला-जैसी कौंध गई, कि उन्होंने सैनों से सरदार-सेनापतियों को बरज दिया और दक्षिणी मल्ल की ओर आँख उठाकर, बोले—"सुनो, हो पराक्रमी मल्लो ! बात पूछते हो, तो पहले प्राण अपनी ठौर रहने दो, कि मुझे जरा मल्लखेत की अपनी रसोई तक ले चलो, कि लक्षण देखूंगा, तब चमत्कार की जड़ बताऊँगा !"

जोशी दीवान को साथ ले, चार भाई मल्ल आगे बढ़ गए, कि अपनी पाताल-पहुँची रसोई का स्वाद याद करते हुए, बोले—"अब बता, रे बुड्ढे ! बता, कि हमारी रसोई के तौले-कसेरे कैसे धरती में धँस गए ?"

जोशी विज्ञानचन्द्र मल्लखेत की धँसी हुई धरती का घेरा नापने लग

गए। धँसी हुई धरती की परिक्रमा पूरी करते-करते, जोशी विज्ञानचन्द्र के होंठों पर एक तोला-भर हँसी हिलुर उठी, कि उनकी आँखों से एक अंजलि-भर आँसू बिखर गए।…कि, बफौलढुँगी को मल्लखेत में गिराने वाला कोई बफौलवंशी ही हो सकता है !…कि, हो, न हो—बाईस भाई बफौलों का वंश-बीज सहेजे लली दूधकेला ही, गाँव-वन भटकती, आज बफौलीकोट लौट आई होगी और बाईस बफौलों के एक बफौल ने ही लुवासार गुलेल के पलड़ों को खींचा होगा, कि बाईस भाई बफौलों का गुलेल-गोसा तो सिर्फ नगर-सीमा तक ही पहुँचता है मगर उसका गुलेल-गोसा मल्लखेत तक पहुँचा है !…. शायद, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा और गढ़ी चम्पावत की बावन होरों की राज-सभा के अदिन अब पूरे हो गए हैं, कि बफौलीकोट में बफौलवंशी लौट आया है !

बफौलवंश की जड़ का पता चलने से तोला-भर हँसे जोशी विज्ञानचन्द्र, कि ज्यादा हँसने से मल्ल अन्यायी रुष्ट होंगे और बाईस भाई बफौलों की सुधि आने से अंजलि-भर आँसू रोए जोशी दीवान, कि मल्लों से क्या वचन बोले—"एहो, चार भाई मल्लो ! इस चमत्कार की जड़ तो मेरी पकड़ में आ गई है, मगर उसे आप लोगों की सेवा में उपस्थित करने तक कुछ समय लग जाएगा ! कुछ समय की मोहलत अगर मुझे मिले, तो मैं गढ़ी चम्पावत नगरी से बाहर जाऊँ और चमत्कार की जड़ लाके आपके सामने रख दूं।… और, सुनो हो चार भाई मल्लो ! यह चमत्कार और कुछ नहीं है। पंचनाम देवों ने चार गोले भभूत के फोड़े थे, आप चार भाई मल्लों की सृष्टि की थी, कि पाँचवा भभूत-गोला आज आप लोगों की रसोई में फोड़ा है। उन राखधारी-खाकधारी जोगियों को झोली-भर भिक्षा का लालच देकर, मैं गढ़ी चम्पावत में न्यौत लाऊँगा, तब आप चारों भाई मल्ल मिलकर, उनको कैलाशवासी और मुझे अपना राजदरबारी दीवान बनाना, कि नहीं तो उन जोगी-जट्टों का क्या भरोसा ? छठवां भभूत-गोला आप

लोगों के महामुंडों के ऊपर भी फोड़ सकते हैं !"

हे भगवान् !

जैसे साधु-संन्यासियों को चार-पहर परमेश्वर की चाकरी सूझती है, ऐसे ही चाण्डालों को आठों पहर चमारपना सूझता है, कि अन्यायी कुबुद्धि के मल्लों को कैसी सत्यानाशी करनी सूझी, कि जोशी विज्ञान-चन्द्र से कड़ककर, बोले—"सुन, हो दीवान बुड्ढे ! मोहलत तुझे देते हैं, कि तू उन पाँचों प्रपंची जटाधारी जोगियों को गढ़ी चम्पावत नगरी में न्यौतला, कि लोग अपने पितरों को चावलों का पिण्ड देते हैं, मगर हम अपने पंचनाम पितरों को उन्हीं की हड्डी-बोटियों के पिण्ड बनाकर देंगे !...मगर, तू जंगल के सियार-जैसा राज-दरबार का चतुर-चालाक दीवान है, कि इसलिए तेरी बातों का पूरा भरोसा हमें नहीं होता है ! ...सो मोहलत तो तुझे देते हैं, मगर जब तक तू पंचनाम जोगियों को हमारी सेवा में नहीं लाएगा, तब तक तेरी गढ़ी चम्पावत नगरी के नर-नारियों में से हगने-मूतने को भी कोई घर से बाहर नहीं निकल सकेगा ! ...और जो कोई निकलेगा, तो यहाँ से उठाकर उसे सीधे गिरिखेत के मसानघाट तक ही पहुँचा देंगे हम, कि अगर तू अपनी गढ़ी का कल्याण चाहता है, तो जल्दी लौटकर आना, कि पंचनाम जटाधारियों की गति-क्रिया करके हम भी संतोष की साँस लेंगे और तुझे भी अपना राज-दरबारी-दीवान बनाएँगे, कि तेरा आखिरी वखत जरा सुख से कट जाएगा !"

* * *

'हाँ कहूँ, तो हरसिंह के हाथ कटते हैं, ना कहूँ, तो नरसिंह की नारी जाती है !'[1] वाली कहावत आज जोशी दीवान के सामने भी आ गई,

1. एक लोक-कथा यों है, कि हरसिंह और नरसिंह दो भाई थे। उनकी

कि अब तो बात बदलने से विनाश ही संभव होगा, कल्याण नहीं, कि न पलटने से भी सारी गढ़ी चम्पावत नगरी की प्रजा के प्राण संकट में फँस जाएँगे !···

जोशी विज्ञानचन्द्र को द्विविधा में देख, मल्ल विफरने लगे, कि 'क्यों, रे बुड्ढे ? बहुत सोच-विचार में जैसा क्या पड़ गया है तू ?"

और इष्ट-पितरों को मन-ही-मन प्रणामकर, महाकाल शंकर का नाम लेकर, जोशी विज्ञानचन्द्र बावन हीरों की राज-सभा से बाहर चले गए, कि—एहो, पितर-परमेश्वरो ! दया करना, दुख हर देना, कि अदिन काट देना, सुदिन न्यौत देना, कि उगती-भोर, ढलती साँझ-वेला की धूप-बाती-फूल-पाती की शपथ है तुम्हें !···और लाज रख लेना मेरी वृद्ध काया की, कि नहीं तो गढ़ी चम्पावत नगरी के नर-नारी मुझे ही कोसेंगे, कि इसी अन्यायी बुड्ढे ने हम पर ऐसा प्राणघाती संकट

बूढ़ी माँ थी और नरसिंह की घरवाली थी। एक दिन दोनों सास-बहू घर में थीं, कि डाकुओं ने उन्हें घेर लिया। नरसिंह की पत्नी तभी मसाला पीसकर, बाहर को निकल रही थी हाथ-धोने, कि डाकुओं के सरदार ने उसके हाथ पकड़ लिए, कि 'कल सपने में मैंने तेरे ही हाथों में हल्दी रचाई है ! अब तू मेरी घरवाली है।' पीछे से आती सास हड़बड़ाकर बोली—"तुम तो इसके जेठ लगते हो, इसके हाथों में हल्दी इसके देवर हरसिंह ने रचाई है !"

डाकू सरदार भी एक ही काँइयाँ था। बोला—"बुढ़िया तू भी सही बात ही कह रही है। मगर मैंने भी झूठ बात नहीं कही। अब तू ही फैसला कर, कि किसने हल्दी रचाई है, तेरे हरसिंह ने, या मैंने ? जो तेरे बेटे हरसिंह ने रचाई है, तो मैं उसके हाथ काट दूँगा, कि उसने अपनी भाभी का धर्म खण्डित किया और तेरी बहू को छोड़ जाऊँगा। ···नहीं तो, अगर मैंने ही हल्दी रचाई है, तो मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगा ! बोल, किसने रचाई हल्दी ? हरसिंह ने ?"

डलवाया है !···

*　　　*　　　*

और···

जोशी विज्ञानचन्द्र, राज-सभा की ड्योढ़ियाँ लाँघकर, अपने महल की ओर बढ़े ही थे, कि महरपट्टी के सात जोलिया महर दिखाई पड़ गए।

"क्यों, हो महरपट्टी के महरो ! आज यों गिरते-पड़ते कहाँ को जा रहे हो ?"—जोशी विज्ञानचन्द्र ने पूछा, तो सातों जोलिया महर और वेग से बावन होरों की सभा की ओर बढ़ने लगे। जोशी दीवान का मन आशंकित हो गया। उन्होंने गोपनकण्ठी-सीटी बजाई, ड्योढ़ियों के सरदार सचेत कर दिए, कि सातों जोलिया महर हाथों में हथकड़ियाँ, पाँवों में बेड़ियाँ बँधवाए, भय से थरथराते, जोशी विज्ञानचन्द्र के ही पीछे-पीछे जोशी-खण्ड में पहुँच गए, कि महरपट्टी के मुखिया दुन महर की प्रपंच-पाती जोशी दीवान के हाथ पड़ गई !

६

37

धरम-माता की भिक्षा, दीवान जोशी की दक्षिणा

ए हो, कथा के ठाकुरो !

• उत्तराखण्ड की यात्रा के यात्री कैलाश मानसरोवर के दर्शन करने जाते हैं, कि हिमाल-स्वामी शंकर की सेवा में शीश झुकाते हैं। अपना लोक-परलोक सुधारते-सँवारते हैं। भक्ति की भावना फलती है—कैलाश-यात्रियों के पाप क्षीण, पुण्य उजागर होते हैं।

कि, कैलाश-मानसरोवर को इसी उत्तराखण्ड के कई पंथों की यात्रा जाती है। कहीं वागेश्वर घाट, पिंडारी को पिंगलेश्वर शंकर की छाया मिलती है, कि कहीं टनकपुर-रामेश्वरघाट में घाटशम्भू की थात मिलती है, कि कहीं धौलछीना-थल-धारचूला की लीक में शक्तेश्वर-भूमेश्वर

शंकर की यात्रा चलती है, कि कहीं वाड़ेछीना-पनुवानौला के पंथ में वृद्ध नागेश्वर, बाल नागेश्वर की चौकी मिलती है, कि इस उत्तराखण्ड की देवलोकी-वसुन्धरा में पंथ-पंथ-ठौर-ठौर, हाट-हाट-घाट-घाट में हिमाल-स्वामी शंकर के हजारों रूपों के अवतारी-आसन पाए जाते हैं ! ऐसे ही—वीर-कथा की अँखरौटी के भी अनेक आसन होते हैं, कि एक कथा-कैलाश के अन्तिम सरोवर तक पहुँचने के लिए कई अन्तर कथाओं का आधार लेना पड़ता है, कथा-कैलाश के यात्रियों को, कि उनकी राह के काँटे रमौलिया के चरणों में लग जाएँ, कि रमौलिया अपने शीश-फूलों को उनके चरणों में बिखेरता है !···

कि, एहो कथा के कमलासनी-भँवरो !

गढ़ी चम्पावत की महारानी भद्रा ने अपने लाड़ले विमलचन्द के लिए राजसी-वेश छोड़ा, संन्यासी-चोला धारण किया था, कि गाँव-गाँव, पट्टी-पट्टी का फेरा करती जागेश्वर-खण्ड में पहुँच गई थी।

अहा रे, भगवान् महाकाल शंकर के संहारकोटी-स्वरूपों के ठौर-ठौर आसन जहाँ लगे हैं, उस जागेश्वर-खण्ड की शोभा कैसी है, कि सघन देवदार-वृक्षों की पाँतों से वहाँ की धरा-धूल की परतें ढँकी हुई मिलती हैं और डाल-पातों की सघन छाया में जहाँ की धरती-पार्वती के गात का हरी मखमल का लहरिया घाघरा मन मोहता है, कि शिला-खण्डों की रुद्राक्ष माला-जैसी पहने वहाँ मृत्युंजयी अलकनंदा की रजत-पयस्विनी धार बहती है, कि जिसकी वैतरणी-तारिणी गोदी में नर-नारी अपनी वृद्धावस्था में विश्राम करते हैं, अधमचोलों से मुक्ति पाते हैं !"

एहो, हिमाल-स्वामी की जागेश्वर-खण्ड में चार अविनाशी-चौकियाँ लगी हुई हैं, कि पहली चौकी पूर्व दिशा में कोटेश्वर शंकर की है, कि दूसरी चौकी पश्चिम में दण्डेश्वर शंकर की और तीसरी चौकी उत्तर में वृद्ध नागेश्वर की है, कि चौथी चौकी दक्षिण में सैम क्षेत्रपाल शंकर की !

—कि, ऐसे पावन तीर्थ-स्थल जागेश्वर-नागेश्वर शंकर के अविनाशी-

घाट में उत्तराखण्ड के तेंतीस कोटि देवता-देवियों का आना-जाना लगा रहता है, कि जहाँ के श्मशान-घाटों की राख हरिद्वार कनखल के तीर्थों की विभूति को मात करती है !

एहो, ऐसे तीर्थों के महातीर्थ नागेश्वर-जागेश्वर में महारानी भद्रा अलकनंदा-भागीरथी में स्नान-ध्यान करती थी और मृत्युंजयी-विभूति रमाती थी, कि चौंसठ तीर्थों का पुण्य एक ठौर बटोरती थी, कि— प्रणाम लो मेरे, अविनाशी-अवधूत स्वामी, कि अपने औघड़दानी हाथों से एक भिक्षा मुझ अभागिनी को भी देना, कि मेरे सिर-छत्र महाराज कालीचंद, आँचल-पूत विमलचंद की रक्षा करना, कि काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की प्रजा के अदिन टालना, सुदिन देना, हो हिमाल-स्वामी !

अहा रे, आज साँझ की बेला का दीपक जलाकर, महारानी भद्रा ने अविनाशी शंकर के सहस्रनामों की रुद्राक्ष-माला फिराई ही थी, कि रुद्राक्ष-कण्ठी के वरदानी दाने आपस में टकराने लग गए, कि वफौलीकोट की बयार जागेश्वरखण्ड में डोलने लगी थी, कि वफौलीकोट में वफौलवंशी-बेटा लुवासार गुलेल के पलड़ों को खींचने लग गया है, कि अपने पितरों का वैर चुकाऊँगा !

महारानी भद्रा का हिया कम्पायमान हो गया, कि बफौल बाईस भाइयों के वैरी कौन, कि एक रानी रुपाली, एक राजा कालीचन्द !...

और वंश-वेलि का एक कुसुम कुँवर विमलचन्द, कि बाईस वफौलों के वीर-वंश में जो भी बाँकुरा जनमा होगा, अपने पितृ-द्रोहियों का वंश उजाड़ करने की ही हठ बाँधेगा, कि वफौलवंशियों के संकल्पाक्षर कभी विफल नहीं हुआ करते !

...और भाग की महारानी, गात की संन्यासिनी बनी वफौलीकोट को चरणधारिणी बन गई, कि ज्योत्स्ना की ज्योति का आधार लेती चल-चलाचलों की यात्रा तय करने लग गई, कि ऐसी सुमंगला-संन्यासिनी

सतवंती की यशोगाथा रमौलिया अपनी सतघरिया-सरस्वती[1] से क्या बखाने, कि जो पलक ढाँपते-उघारते पितर-पूतों को सुखियारी पाना चाहती है !

चरण बढ़ते हैं, कि पंथ छोटा होता जाता है,

कि, रात बीतती वेला रमौलिया की वाणी भी आगे बढ़ती जाती है, कथा के छंद छोटे पड़ते जाते हैं और रात-भोर-भर की दुकौलिया यात्रा रमौलिया चार आँखरों में पूरी कर देता है, कि जागेश्वर खण्ड से चली मैया महारानी भद्रा, भोर की वेला बफौलीकोट की वीर-प्रसविनी धरती-पार्वती के आँचल में पहुँच गई और बफौलों के आँगन में कमण्डलु का जल छिड़कने, संन्यासी-चिमटा बजाने लग गई—"ओ, री माई ! तेरे पितर-पूतों को परमेश्वर दाहिने होंगे, कि भिक्षा दे !···कि, तेरी अटारी-पिटारी का वैभव बढ़ेगा, भिक्षा दे !···कि, तेरी गोठ की गैया बछिआ, तेरे घर की बहू बेटा देगी, कि भिक्षा दे !"

भिक्षांदेहि, भिक्षांदेहि, भिक्षांदेहि !

अहा रे, भरपूर भण्डारिणी लली दूधकेला के कानों में भिक्षा के तीन बोल गूंजे थे, कि आँचल-भर बासमती लेकर, देली पर पहुँची—"लो, माई ! चार अक्षतों की यह भिक्षा ग्रहण करो, कि आज मेरा बफौल-वंशी युद्ध-यात्रा पर जाने वाला है, उसे आशीर्वाद दो, कि बेर विजयी बने, बेर घर लौटे !···कि, जब मेरा पूत पितरों का ऋण चुकाकर, सुखियारी देह लेकर, मेरे पास लौटेगा, तो मैं तुम्हें दूध-बासमती का भोग लगाऊँगी, माई, कि इस वेला यह अक्षतों की भिक्षा ग्रहण करो !·· कि, एक पूत से पूत वाली हूँ मैं और मेरी एक आँख की उजियाली, एक गोद की हरियाली है, कि उसे अपने सत्-धरम की विभूति दो, माई, कि मैं तुम्हारी चरण-सेवा करूँगी !"

1. चूँकि कथा-गायक रमौलिया अनेकों घरों में कथा सुनाया करता है, इसलिए वह अपनी सरस्वती (जिह्वा) को सतघरिया कहता है !

भिक्षा के प्रति दानी अशीष न्योतकर, लली दूधकेला संन्यासिनी माई के चरणों में झुक आई, तो उसके आँचल-अक्षत महारानी भद्रा के चरणों में बिखर गए, कि आश्चर्य से अटपटाकर, लली ने अपना सिर ऊपर उठाया और संन्यासिनी के भभूत-पुते कपाल की रेखाएँ देखने लगी, तो आँचल-छोर खड़े कुँवर विमलचन्द पर दृष्टि पड़ गई !···

एहो, आज लली दूधकेला एक निमिष संन्यासिनी को, एक निमिष वाल-संन्यासी को देखने लगी, कि जब वफौल स्वामी थे और उनकी माता श्री थीं, तब अनेकों संन्यासियों-संसारियों को भिक्षा दी थी, मगर ऐसी संन्यासिनी कहीं नहीं देखी, कभी नहीं देखी, कि जिसके चरण देखे से आँखों की ज्योति दिप्-दिप् करती है, कि ऐसा संन्यासी बालक नहीं देखा, कि जिसकी भभूत-ढँकी ललाट-रेखाओं से सूरज-किरनों की जैसी चमक फूट रही है !

हाथ जोड़ दिए, लली दूधकेला ने, कि—"माई हो, कौन हो तुम, कि तुम्हारा वेश संन्यासिनी का, मगर स्वरूप राजरानियों का जैसा है, कि वफौलवंश की वहू के आँचल-अक्षत सिर्फ राजवंशियों के चरण में ही बिखरा करते हैं, ऐसा मुझे बताती थीं, मेरी माताश्री !···और, माई हो, यह तुम्हारे संग का संन्यासी-वालक कौन है, कि जिसके कपाल की चक्रवर्त्ती-रेखाएँ भभूत-परतों में सूरज-किरनों-सी चमचमाती हैं ?"

महारानी भद्रा मौन हो गई, कि हो-न-हो यह स्वभाव की सुशीला, ज्ञान की सरस्वती घरिणी वाईस वफौलों की लली दूधकेला है, और जागेश्वर खण्ड में महरपट्टी का फेरा करके लौटी जोगियों की जमात में जिस पराक्रमी पूत की चर्चा चलती थी और जिसकी फेंकी वफौलढुंगी गढ़ी चम्पावत में पहुँच गई, कि मेरे रुद्राक्ष-कण्ठी के दाने डोलते थे, वह वफौलवंशी भी और कोई नहीं, इसी सुभागी का पूत होगा !

···और अगर इसके आगे मेरा, मेरे पूत का भेद खुल गया, तो घर पहुँचे वैरी मानेगी हमें, कि अपने पराक्रमी पूत को मरवाएगी, कि जो वाईस वफौलों का एक ···

कुँवर कहाँ पार पाएगा ?

"अल्लख ! सुखी संसार, भरपूर भण्डार रहे तेरा, दाता माई !" —जोगन-टेर टेरने लगीं महारानी भद्रा, कि—"अल्लख, अविनाशी शंकर के नाम की, कि कोटेश्वर-पिंगलेश्वर, शक्तेश्वर, भूमेश्वर-नागेश्वर-विश्वेश्वर, के मृत्युंजयी-घाटों के स्वामी के नामों की !... अल्लख, सत्गुरु गोरखनाथ, सतगुरु महेश्वरनाथ के नाम की, कि जिन गुरुओं ने इस जोमन-जट्टी को बाल-काल में ही संन्यासिनी बनाया, कि दीक्षा देकर, भिक्षा माँगने को खरुआ की झोली कन्धे पर डाल दी ! सुन हो, माई, कि सड़कों की संन्यासिनी को महलों की महारानी क्यों समझती है ? नीचे झुकी थी, तो तेरे आँचल के चावलों ने बिखरना ही था।...सच मान, माई, मैं श्मशान-घाटों की शंकर-पंथ की संन्यासिनी हूँ, कि मैं आज बफौलीकोट यह सुनकर ही आई थी, कि धरम के धनी बफौलों का वंशधारी पूत यहाँ आ गया है, तो आज उसके हाथों की भिक्षा लेके आऊँगी, कि बफौलवंशी-पूत विजयी बनेगा, गढ़ी चम्पावत नगरी की विपदा हरेगा। चार चाण्डाल मल्लों की चौकड़ी वहाँ से हटाएगा, कि माई रे, बुलादे अपने पूत को, कि मैं उसी के हाथों से भिक्षा ग्रहण करूँगी !..."

अहा रे, लली दूधकेला कुतरुक्क किलक उठी, कि—"माई हो, तुम्हें तुम्हारे चरणों-बिखरे अक्षतों की ही शपथ सौंपती हूँ, कि झूठ क्यों बोलती हो ? माई हो, बुरा न मानना, कि जब तुमको गुरु गोरखनाथ ने बाल-काल में ही शंकरपंथी-संन्यासिनी बना दिया था, तो यह राजकुँवर-जैसा लाल कैसे तुमसे जनमा ?...कि, माई हो, असत् की संतान के कपाल में कोयले की छाप पाई जाती है, कि यह तो तुम्हारा सत्-धरम का पाला-पोसा कुँवर है, सो इसका मुँह देखे से चन्दवंशी राजाओं का स्वरूप याद आता है, कि मेरी माताश्री कहती थीं, कि चंदवंशी राजाओं के कपाल में शंख की छाप पाई जाती है !"

महारानी भद्रा अटपटा गईं, कि कभी लली दूधकेला का, कभी

मैं चरण पूजने वाली हूँ आपके, कि आपका कुँवर भी मेरे लिए अजित बेटा ही है।··· मगर, मेरा वफौलवंशी-बालक बल-विक्रम का ही बाँका नहीं, बल्कि स्वभाव का भी हठी है, कि अपने मुख से निकले वचनों से पीछे नहीं फिरता !··· कि, ओछे वचनों के लिए क्षमा करना, हो महारानी दी !··· मेरे बावले बालक अजित वफौल ने क्या संकल्प कर रखा है, कि अपने पितर वफौलों के घात का बदला लेके ही सुख की पलक लगाऊँगा, कि चन्दवंश का बीज-उजाड़ करूँगा !··· हरि, हे हरि ! चन्दवंश के इस राजकुँवर का मोहिल मुखड़ा देखे से ही मेरे आँचल में ममता की हिलोर उठती है, कि इसके अदिन मेरे आँचल पड़ जाएँ !··· अच्छा, महारानी दी !··· मैं आपको भिक्षा क्या दूँगी, कि यह सारा वैभव ही आपका दिया हुआ है, कि जो-कुछ चाहो, इस घर की मालकिन की तरह ले जाओ, कि भविष्य में भी अपना भेद न खोलना।··· अजरगूँठ को पानी पिलाकर, मेरा वफौलवंशी लौट ही रहा होगा···"

"उसे लौटने दे, ललो !"—महारानी भद्रा बैठने को आसन ढूंढने लगीं—"ललो रे, मेरा यह कुँवर भी रणबाँकुरे स्वभाव का है, कि अभी बालक-सा है, तो आँचल से ढाँपकर रखती हूँ, इसकी योद्धा-वृत्ति को जागने नहीं देती हूँ।··· तो इसे कब तक छिपाए रहूँगी मैं ? मेरे आँचल की छाया छूटते ही यह अपना कुल-गोत्र दिखाने लगेगा, कि तेरे वफौल-वंशी-बालक से कब तक मैं इसकी रक्षा कर पाऊँगी ?··· सो, आने दे अजित बेटे को, कि मैं उनके आगे आँचल फैलाऊँगी, स्वामी और पूत के प्राणों की भिक्षा माँगूंगी, कि जब वफौलवंशी वचन दे चुकेगा, तभी अपना भेद खोलूंगी !"

महारानी को चंदन-चौकी का ऊँचा आसन देते हुए, ललो दूधकेला सुख की हँसी हँसने लगी—"महारानी दी, मेरे स्वामी सच ही कहते थे, कि 'हमारी मैया महारानी विद्या वाणी में सरस्वती को मात करती हैं !' और मैं अपने स्वामियों के सत्य-वचनों का सुख प्रत्यक्ष भोग रही हूँ, कि इस उपाय से मेरा बालक अवश्य चन्दवंश को कल्याणकारी

वन जाएगा, कि वह भी अपने पिताजनों की तरह शरीर से हिमाल, स्वभाव से पराल है, रानी दी !···"

* * *

अहा रे, कोस-दूर था, कि वफोलवंशी के अजरगूंठ अश्व की टाप सुनाई देने लगी। लली दूधकेला ने आने का संकेत किया, आँगन में उतर आई।

आँगन के पथरीटों पर अपनी पग-तलियों की छाप उतारता अजित वफोल लली के पास पहुँचा ही था, कि लली दूधकेला बोली—"लाल मेरे, देख ऊपर और प्रणाम सौंप, कि चन्दन-चौकी में महारानी···हरि, हे हरि ! संन्यासिनी माई बैठी हुई हैं, कि उनके आँचल से लगा राजकुंवर···बाल-संन्यासी एक बैठा हुआ है।··· सुन, वफोलवंशी, कि जा, उनके चरण छू और उनको मुंह-माँगी भिक्षा दे, कि आज तू अपनी विजय-यात्रा पर जाने वाला है, तो धरम-माता के आशीर्वाद तेरे पंथ के विघ्न दूर करेंगे !"

लली का आज्ञाकारी पूत आगे बढ़ा, कि जुगल-हाथ चरणों पर धरे—"प्रणाम लो, हो संन्यासिनी माई ! बोलो, क्या भिक्षा लोगी, कि मेरी मैया के आदेश का पालन करूँगा मैं, कि आपको मुंह-माँगी भिक्षा दूंगा !"

महारानी भद्रावती ने आशीर्वाद दिया, कि 'जुग-जुग जीना, मेरे वफौलवंशी बेटे !'··· और वचन माँगने लगीं, कि बिना वचनों की मुँहमाँगी-भिक्षा फलती नहीं है !

"एक वचन !··· संन्यासिनी माई !··· माँगो, मुँह-माँगी भिक्षा !"

"तीन वचन दे, मेरे दानी वफौलवंशी ! सत्य वचन त्रिकाल-वचन ही होते हैं, कि एक वचन, दो वचन, तीन वचन !"—महारानी भद्रावती ने आग्रह किया।

"नहीं, संन्यासिनी माई ! एक वचन, सिर्फ एक ही वचन दे सकता हूँ मैं, कि वफौलवंशियों में तीन वचन देने की परम्परा नहीं चलती, कि उनका दिया हुआ एक ही वचन बहुत होता है !"—वफौलवंशी अजित मुस्कुराने लगा।

"तो, मेरे दानी पूत !··· मैं तुझसे आँचल पसारकर भिक्षा माँगती हूँ, कि तू मेरे स्वामी और मेरे पूत के प्राणों की रक्षा ही करेगा, उनको वैरी नहीं बनेगा !"—महारानी भद्रा ने आँचल पसार दिया।

"ओरी, बावली-भोली संन्यासिनी माई ! ऐसी भिक्षा क्यों माँगती हो ?"— अजित वफौल किलककर, हँसने लगा—'माई हो, भला मैं आपके स्वामी-पूत के प्राणों को वैरी क्यों बनूंगा, कि आपके स्वामी-पूत से मेरा क्या वैर हो सकता है ? ·· मेरे वैरी तो गढ़ी चम्पावत नगरी में रहते हैं, कि आज उन्हीं का वंश-नाश करने को मैंने प्रस्थान करना है !··· अच्छा, आपके स्वामी और पूत के प्राणों की रक्षा का वचन तो मैंने दिया ही, कि जब उन पर विपदा पड़ेगी, तो पहले मेरे ही प्राणों पर बीतेगी !··· और अब आप कुछ और भी भिक्षा माँगें, कि आपको सन्तुष्ट देखकर, मेरी मैया भी सुखियारी बनेगी, कि उसने आपको मेरी धरम-माता बताया है !"

"बस, मेरे वफौलवंशी बेटे, तेरी दी हुई इतनी-ही भिक्षा के लिए तेरी यह अभागिनी माता जन्म-जन्मान्तरों तक ऋणी रहेगी, कि, लाल मेरे !···"—महारानी भद्रा ने हाथ जोड़ दिए—"यह तेरी संन्यासिनी धरम-माता, और कोई नहीं, गढ़ी चम्पावत की अभागिनी रानी भद्रावती और यह तेरा धरम-भाई राजकुँवर विमलचन्द ··"

हरि, हे हरि !

महारानी भद्रा के वचन सुनने थे, कि अजित वफौल की भृकुटियां बाँकी हो गईं, केशरी-काया क्रोध से काँपने लग गई—अर-र-र-र-र···

मगर, वफौलवंशी का एक वचन ही अटूट होता है, कि पल-भर में ही शान्त हो गया अजित वफौल और महारानी के जुड़े हुए हाथों को

अपना शीश झुकाने लगा—"मैया महारानी, जनम-माता को जो वचन दिया था, कि चन्दवंश का नाश करूँगा, वह वचन आज मैं धरम-माता से हार गया हूँ, कि पितर-घात की ज्वाला जो मेरे तन-मन को विना आग को जलाती है, उसे झेलूंगा, मगर धरम-माता को दी हुई भिक्षा का अपमान नहीं करूँगा, कि आपके स्वामी-पूत के प्राणों का वैरी नहीं बनूंगा !"

"धन्य हो, मेरे बफौलवंशी !"—महारानी भद्रा गद्‌गद् हो उठीं, कि लली दूधकेला ने धरती पर झुके हुए अजित बफौल के गज-चौड़े ललाट पर अपने अनार-फाँक अधरों की ममता रख दी—"लाख बरस की उमर पाना, मेरे लाल, कि तेरे मुख के वचनों से मेरे आँचल का दूध धन्य-धन्य होता है।"

* * *

गढ़ी चम्पावत से चले जोशी दीवान, तो राह-पड़ती ठौरों पर विजेसारी बजंत्रियों वाले ढोलियों, तेलकूट नगाड़ों वाले चोपदारों और रणसिंह तूर्यों के वादक तूर्यबाजों को संदेश देते चले, कि—सुनो रे, बजंत्रीवाजो ! आज मैं बफौलीकोट जा रहा हूँ, कि बारह वर्षों के अदिन टालने को बफौलवंशी को न्यौतूंगा, सो आज तुम लोग भी अपने साज-बाज न्यौतना। नगाड़ों को तेल पिलाना, ढोल-दमुवों के ढीले डोरे कसना, तूर्यों को उर्ध्वमुखी बनाना, और पिठाँ-अक्षत से अपनी-अपनी बजंत्री को पूजना, कि बफौलवंशी जिस राह चले, वहीं से उसे रण-निनाद सुनाई पड़े, कि उसका बफौलवंशी रक्त में शुक्ल-पक्ष की रातों के समुन्दर-ज्वार उठेंगे, तो चार भाई मल्लों को मारेगा, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की धरती-पार्वती का अनिष्ट दूर करेगा।...मगर, खबरदार, जब तक मैं बफौलीकोट से लौट के, महाकाल का सूर्यमुखी-शंख नहीं फूंकूं, तब तक मौन बैठे रहना, कि मल्लों के कानों में भनक पड़ेगी,

ता तुम लोगों को वैरी वन जाएँगे, कि आज से उन्होंने गढ़ी चम्पावत नगरी की प्रजा के लिए घर से वाहर निकलने का दण्ड प्राणघात रख दिया है !…"

जोशी विज्ञानचन्द्र आगे वढ़ते जाते हैं, कि पीठ के पुठत्रे में सूर्यमुखी शंख रखा हुआ है। वफौलवंशी को न्यौतते ही शंख फूंक दूंगा, कि राजा न सही दीवान तो हूँ ही गढ़ी चम्पावत का, सो राजवंशी-शंख फूंकने का अंशाधिकारी मैं भी हूँ, कि वारह वर्षों से मौन पड़े इस शंख को आज की सुवेला में गुंजायमान करना ही होगा !

एहो, कल्पना-जैसी करते जाते हैं, जोशी दीवान—महारानी भद्रावती की स्मृति गहरी होती जाती है, कि कैसे सुमंगला वहू इस सूर्यमुखी-शंख को गुंजारती थी, कि हिया मुग्ध, गात पुलकायमान होता था !

और सोच-विचार के रेशों की रस्सी-जैसी वाँटते चले जा रहे हैं, जोशी दीवान, कि न-जाने वफौलवंशी कैसा होगा ? वल-विक्रम का तो अपने पितरों से भी वाँका है, कि स्वभाव-स्वरूप का भी उन्हीं-जैसा उदार-मोहिल नहीं हुआ तो राजा कालीचन्द और रूपाली रानी को भी दण्ड दिए विना मानेगा नहीं, कि वाईस भाई वफौलों के घात का वदला चुकाएगा !…

आते-आते वफौलीकोट में जव पहुँचे, जोशी विज्ञानचन्द्र, तो देखते क्या हैं, कि आज लली दूधकेला के आँगन में पर्व-जैसा जुड़ा हुआ है। महारानी भद्रा का संन्यासिनी का वेश उतार रही है लली दूधकेला, महारानी का रूप दे रही है, कि कुंवर विमलचन्द का संन्यासी-चोला उतार रहा है, दूर से ही 'मैं हूँ वफौलवंशी !' की पहचान देने वाला अजित वफौल, कि राजकुँवर का राजसी रूप दे रहा है !…

महारानी को तो पहचान ही गए जोशी दीवान, ज्ञान-अनुमान कुंवर विमलचन्द का भी लगाने ही लग गए, कि स्वरूप तो चन्दवंशियों का ही है !

महारानी भद्रावती ने जोशी दीवान को देखा ही था, कि बावली-सी दौड़ीं, चरणों पर झुक गईं—"जोशी बा !"

"भद्रो बेटी…"—महारानी के सिर पर जोशी दीवान की आशीर्वादी अँगुलियाँ प्यार के आवेग से थरथराने लगीं, कि आँखों से आँसू नितर आए !… राजकुँवर विमलचन्द को वक्ष से लगाकर, 'आयुष्मान भवः' कह, लली दूधकेला का भी प्रणाम ले चुके, तो अजित बफौल की ओर बढ़ गए जोशी दीवान।

*   *   *

और जब बफौलवंशी अजित ने चरण छुए, जोशी दीवान के, तो जोशी दीवान धीर-गम्भीर कंठ से बोले—"सदा विजयी होना, मेरे बफौलवंशी ! —कि, एक तेरे चरण छुए से मुझे बाईस प्रणामों की गरिमा मिल रही है, कि तू अपने पितर बफौलों का नाम उजागर करना !… सुन, बफौलवंशी ! मैं गढ़ी चम्पावत का दीवान बाद में हूँ, जात का ब्राह्मण पहले हूँ, कि जब तेरे पिताजन मेरे चरण छुआ करते थे, तो मुँह-माँगी दक्षिणा मुझे देते थे, कि बोल, तू क्या देता है ?"

"मैं भी मुँह-माँगी दक्षिणा ही दूँगा, दीवान दादा, कि मेरे लिए पूज्य पितर भी जब आपके चरण छूते थे, तो मैं बालक हूँ। आप आदेश देकर दक्षिणा ग्रहण करें, कि मैं बफौलवंशी एक वचन देता हूँ !"

"मैं जानता हूँ, मेरे बेटे, कि बफौलवंशी एक—सिर्फ एक ही वचन दिया करते हैं !"—जोशी दीवान गद्गद् कंठ से बोले—"सुन, मेरे बफौलवंशी ! चटुली रानी रुपाली के प्रपंच-जाल फैले थे, कि चन्दवंशी राजा उसका चाकर बन गया था। कुमाऊँ-खण्ड के दुर्दिन आने थे, सो तेरे पिताजन नहीं रहे, कि जो कुमाऊँ-खण्ड की धरती-पार्वती के पराक्रमी प्रहरी थे। जब तक उनके बल-विक्रम की कल्याणकारी छाया हम लोगों के सिरों पर थी, तो किसी की कानी आँख हम पर नहीं पड़ी थी,

कि राज-प्रजा सभी सुख के दिन बताते थे, मंगल-पर्व मनाते थे !... मगर, जब से बाईस भाई बफौलों के बल-विक्रम का आसरा टूट गया, बफौलवंशी !... हरि, हे हरि ! उस दिन का यह आज का दिन है। राजा-प्रजा सभी के प्राणों पर ऐसी बुरी बीत रही है, कि जिस गढ़ी चम्पावत नगरी में नर-नारी नाचते-कूदते, उत्सव-जैसा मनाते चलते थे—आज उसी गढ़ी चम्पावत नगरी के प्रजाजनों के लिए दिशा जाने को बाहर निकलना कठिन हो गया है !... मेरे बफौलवंशी, जिन चार चाण्डाल मल्लों को तेरे पिताजनों ने गढ़ी चम्पावत के द्वारों का दरबान बना रखा था, आज उन्हीं चार चाण्डाल मल्लों का अन्यायी राज ऐसा चल रहा है, कि प्रजा को कौन पूछे, कि चन्दवंशी राजा आधा हुड़ा हुआ, उनकी चाकरी बजाता है, कि मल्ल चाण्डाल कुश्ती खेलते हैं, तो तेल-मालिश करता है !... और, सुन मेरे बफौलवंशी !... जो राज-रानियाँ सोने की पालकियों पर निकलती थीं, तो जन-जन की 'जै महारानी मैया, रानी मैया !' पाती थीं, आज उन्हीं की दशा धोबन-कुम्हारनों से भी गई बीती है। मल्ल चाण्डालों की चरण-सेविका बनी हुई हैं, कि चँवर गाई की पूंछ का चँवर झुलाती हैं, कि मल्ल उन्हें हाट की हुड़क्यानियों की तरह छेड़ते हैं !... ध्यान में धर, मेरे बफौलवंशी, कि आज बारह वर्षों की बनवासिनी-जैसी धरती-पार्वती की दशा क्या है। उसके आँचल के पूत चाण्डाल मल्लों को चार मनों का कलेवा, आठ मनों का भोजन देते-देते स्वयं भूखों मरने लग गए हैं, कि अठारह गजों के टोपे, बावन गजों के चोले देते-देते, उन्होंने अपने घर की नारियों के घाघरे-पिछौड़े भी मल्लों की पर्वतकाया पर कफन-जैसे डाल दिए हैं, कि सतवंती माँ-बहनों को अपनी लाज ढँकनी कठिन हो गई है ! .. तो, मेरे बफौलवंशी !... दक्षिणा दे मुझे, कि पितर-घात का वैर बिसर जाएगा, धरती-पार्वती के आँसू पोंछेगा तू, कि राजा कालीचन्द को क्षमा करेगा, चाण्डाल मल्लों का अन्यायी आसन हटाएगा तू ! यह गात भूला, बाल-फूला बूढ़ा ब्राह्मण तुझसे दक्षिणा माँगता है..."

जैसे सांटों के आघातों से चाम्रपुड़ी वाला ताम्राधारी तेलकूट नगाड़ा और अधिक गूंजता है, कि जैसे तपाया सोना और अधिक पीला रंग देता है, कि जैसे आंच लगने से बारूद का गोला और विस्फोटक बन जाता है—

अहारे, जोशी दीवान के विह्वल वचनों की टीस से ऐसे ही आज वीरधर्मा वफौलवंशी की बाँहों में बल-विक्रम की तरंगें उठने लगीं, कि उस वीर बालक की छाती का घेरा छत्तीसगजी बनने लग गया, कि आज तो जवानों के लिए भी छत्तीसइंची-छाती ही बहुत बड़ी समझी जाती है !…

कि, एहो मेरी कथा के सुनने वालो !

आज अब वह वीरवंशी रक्त-चोटी कहाँ, कि जिसमें चौमसिया काली-गंगा की महटिया लहरों-जैसी हिलोरें उठती थीं, कि तब सतजुग का समय था, तो पूत पितरों पर उतरते थे, कि आज के पितर ही दान-धरम के नाम पर 'हायतोबा-हायतोबा, मिट्टी उठ जाए, मगर मुट्ठी नहीं खुले !' करके प्राण छोड़ते हैं, कि जहाँ सत्-धरम नहीं होता है, वहाँ बल-विक्रम कैसे हो सकता है ! तब की भण्डारिणी माता बड़ी बहू को आँचल-भर बासमती देकर भिक्षा देने को देली 'पर भेजती थी, कि अब की बुढ़िया सासों के जितने झोल गात में, उससे दूने आत्मा में पड़े हुए होते हैं, सो सबसे छोटी बहू को भिक्षा देने भेजती हैं, कि छोटी मुट्ठी में चावल के दाने कम-कम जाएँगे !…कि, जिस कलजुग में मूठ-भर चावल देते घर की घरिणी की छाती कसमसाती है, उस कलियुग में क्या पितर होंगे और क्या उनके पूत होंगे, कि बल-विक्रम के नाम पर घर की जोरू का गुस्सा देखकर ही पालतू कुत्ते-जैसे थरथराते हैं !…कि, आज के पापी समय में घर के पितर-पूतों का बल-विक्रम तो रीता ही, साथ ही, गोठ के बैलों के जूड़े भी कमजोर पड़ गए हैं !….कि, जो बैल हल-भर धरती जोतते में जूड़ा मटकाते चलते थे, आज हल कंधे पर धरते ही गौला बनने लगते हैं, घुटने टेक देते हैं !…

'एहो, मेरी कथा के ठाकुरो !

ऐसे पापी-दुर्लभ समय में अपने कथा-स्वामी बाईस भाई बफौलों का नाम लेता हूँ, धन्य-धन्य कहता हूँ, कि जिनका बल-विक्रम का बांका बफौलवंशी-पूत क्या हुँकार भरने लगा, कि—"एहो, दीवान दादा ! धरम-माता भद्रादेवी को दी हुई भिक्षा, आपको दी हुई दक्षिणा के वचन एक-वचन की शपथ लेता हूँ, कि धरम-माता और धरती-पार्वती के नाम पर जनम-वेला से सँग लगाया हुआ वैर विसर जाऊँगा !...और, शपथ लेता हूँ मैं बफौलवंशी, कि जिस धरती-माटी के ललाट-तिलक को मेरे पितर बफौल राजा-महाराजाओं के स्वर्ण-मुकुटों से अधिक महान् मानते थे, उस धरती-पार्वती की विपदा दूर करने को प्राणों की दक्षिणा दूंगा, कि कुमाऊँ-खण्ड के राजा-प्रजा के वैरी चार भाई मल्लों के लिए सूरज का गोला, जलता शोला बन जाऊँगा, कि आँखें फोड़ने को गिद्ध, रक्त पीने को व्याघ्र बन जाऊँगा !"



38

वीर-कथा के अन्तिम छन्द

ए हो, वीर-कथा के वचन-लोभी ठाकुरो !

चन्द्रमुखी रात्रि-वेला का अन्तिम आसन लगने लग गया है, कि पूर्विया-खण्ड की उदयाचल-चोटी में उजियाली का घघरिया-घेरा पड़ने लग गया है, कि बँसवाड़ी की सीध के ऊँचे आकाश में विहान-तारा बाल-संन्यासी के जैसे निर्मल आसन में बैठ गया है, कि पूर्व दिशा उदयमुखी होने लग गई है !

सुनो हो, गुसाँई ठाकुरो, कि पूस-माघ के महीनों में पुरुषों के हाथ का काम-काज अधिक नहीं होता है, दिन-चढ़े तक कथा सुनके भी उदयाचल-सूर्य के अस्ताचल जाने तक गरम तोशकों से मुँह ढँकते हैं, निंदियाली बयार का विश्राम भोगते हैं !···मगर, चाहे सावन-भादों के हीले-गीले, गोड़ने-गिराने के महीने हों, कि पूस-माघ के काम-काज के सजीले, आँचल के निर्मले महीने—घर की सुमंगला घरिणी को तो घर-

गृहस्थी के कमर चसकाकरके मन को संतोष, आँखों को सुख देने वाले काम-काजों को अपनी चाम की कुसुमिया, काम की कठीली हथेलियाँ लगानी ही पड़ती हैं, कि घर की लक्ष्मी पूसी उसका गात सुरसुराती है, 'म्याऊँ, दूध खाऊँ !' कहती है !···कि, गोदी का सुमन-कंठी-बालक उसका आँचल टटोलता है, 'माँ, दूध खाँ !' कहता है और सजीली सेज में लटपटी-लोट लेने लगता है !···कि, पोथिलों को चारा खिलाने के लिए अन्न-दाने बटोरने को घोंसले को चिड़िया उड़ती है, तो चिड़िया मयेड़ी के जैसे ही पंख घरिणी की आँखों की नींद को भी फूट जाते हैं, कि पूत-पूसी के नामों के दूध-कटोरे भरने को गोठ जाती है। काजरी-गाजरी गाई दुहती है, कि बिनुवा-चनुवा बछड़ों को टुकड़े खिलाती है, चौथा थन पिलाती है, कि बेर बढ़ना, रे छौनो, हल को कंधा देना !

एहो, अब रमौलिया भी वीर-कथा के अंतिम-छंदों के आसन खोलता है, कि चन्द्रमुखी-रात्रि का अंतिम छंद खुलते ही पूत-पूसी दूध-कटोरे माँगेंगे, कि अगर कथा पूरी नहीं हुई, तो घरिणी गैया कैसे दुहेगी ?··· कि, रमौलिया क्यों विहान-वेला में पूत-पूसी के दूधिया-कंठों के उलाहने झेले ?

*   *   *

अहारे, अहा !

आज बफौलीकोट की वीरगढ़ी से बल-विक्रम का बाँका, वचनों का धनी और भावों का भण्डारी अजित बफौल गढ़ी चम्पावत के लिए प्रस्थान करने लगा, कि अपना वीर-वेश सँवारने लगा। गंगाजली-चोला पहना, कि दूधिया-सुरियाल पहनी, कि रेशमी फेटा अपनी वज्र-कठोर कमर पर बाँधा बफौलवंशी ने ! अपनों को प्यारी, दुश्मनों को भारी उसकी बाँहों में अठहथिया-घेरों के बाजूबन्द लग गए, कि लहरीले-पुट्ठों पर गेंडाचाम की चन्द्रमुखी ढाल लटक गई और मखमली-म्यान में दुधारी

तलवार, कि हाथ में दलजीत खाँडा सँवर गया, कि जब वफौलवंशी बेटे के सिर पर लली दूधकेला ने पुतलिया-पाग बाँधी, तो वफौलवंशी के भँवरीले-कंधों में पुतलिया-पाग के तुर्रे से भी ऊँची रक्त-डोरियाँ उठने लगीं, कि—

मेरे वफौलवंशी,

तेरा रण-बाँकुरा रक्त दुश्मनों को सत्यानाशी, अपनों को कल्याण-कारी बन जाए, कि तेरे वीरवंशी-स्वरूप पर आज दीठ क्या पड़ती है, पिनालू के तिरछे पातों पर पड़ी जल-बूंद-सी ठहर ही नहीं पाती है, कि तेरी सूरजमुखी-देह देखते ही, आँखों का काजल कम लगने लगता है !

एहो, वीरवंशी वफौल ने संग्रामकोटी-बाना धारण किया और जननी-जन्मभूमि के चरणों की मिट्टी का ललाट-तिलक लेने लग गया, कि जब तक धरती-मैया की चरण-धूल के आशीष-फूल शीश पर नहीं चढ़ते, तब तक बल-विक्रम के नक्षत्र भी ऊँचे नहीं हो पाते हैं !

वीरप्रसूताललली दूधकेला का गात गद्गदा गया, हिया हिलुरने लगा, कि—विजयी हो, मेरे वफौलवंशी !

वीरगढ़ी वफौलीकोट की धरती-माटी ममता से मुरमुराने लगी, कि—मेरी उमर लेना, रे वफौलवंशी !

—कि, एहो कथा के सुनने वालो !

धरती-माटी ने अपनी उमर सौंपी थी, कि अजित वफौल अमर हुआ था, कि धरमशिला में बोलों का बन्दी आज भी वह वफौलवंशी अमर ही है, कि लगते-कलियुग में धरमशिला में ठौर ली थी, आते सतयुग में फिर वीरगढ़ी की माटी जोतेगा !

धरम-माता के चरण छुए, जोशी दीवान के चरण छुए, कि कुँवर विमलचन्द को बाँहों में भरकर, वफौलवंशी दुधैली-हँसी हँसने लगा—"राजकुँवर भाई, अब तू सूर्यमुखी-शंख को गुंजायमान कर, कि मैं अपने पितरों का रणकोटी तेलकूट नगाड़ा धधकाता हूँ !"

●

39

रणकोटी नगाड़े के ऊँची-उठान, नीची-बिठान के बोल—

बजन्त्री, सत् के बोल बोलना !

कि, सवा-सवा मन के सौंटे हाथों में लेके जब बफौलवंशी बफौल-चौंतरे पर धरे ताम्राधारी चाम्रपुड़ी के ततैया, तेलकूट नगाड़े पर ऊँची-उठान, नीची-बिठान के बोल निकालने लगा, तो तीन लोक, चौदह भुवनों में रणकोटी-नगाड़े की प्रचण्ड ध्वनियाँ गूंजने लगी, कि गढ़ी चम्पावत में चार भाई मल्लों की कमर थरथराने लग गई !

राजा कालीचन्द की पलायमान् आत्मा में आनन्द की लहर उठ गई, कि—हे ईश्वर, आज मेरे कलंकी कानों को वीरगढ़ी बफौलीकोट के रणकोटी-नगाड़े की गूंज सुनने का सुख किस जन्म के पुण्य-प्रतापों से मिल रहा है ?

छाती पर चढ़ी चार चाण्डाल मल्लों की चौकी बिसर गया राजा कालीचन्द, कि रणकोटी नगाड़ा ऐसे तभी गूंजता है, जब कोई बफौलवंशी शत्रुओं को साधने के लिए संग्रामकोटी-बाना धारण करता है !···

अहारे, आज गढ़ी चम्पावत नगरी के नर-नारियों के चाण्डाल मल्लों के भय से थरथराते कंठों से सुख की किलकारी-जैसी फूटने लगी—"हे ईश्वर, आज बीरगढ़ी के बफौल-चौंतरे का रणकोटी नगाड़ा गूंजने लग गया है, कि दूब की जड़-सा रहा हुआ कोई बफौलवंशी संग्राम-कोटी-बाना धारण कर चुका है, कि उसके बल-विक्रम को हमारे पुण्य लग जाएँ !"

*　　　*　　　*

एहो, उधर से बफौलवंशी अजित और चन्दवंशी विमलचन्द कुँवर के चरण बढ़े, कि इधर हाट-हाट-घाट-घाट के बजन्त्रीबाजों ने आज बारह वर्षों के बाद अपनी बजन्त्रियों को गुञ्जायमान किया, कि गाँव-घरों के नर-नारी गढ़ी चम्पावत की ओर बढ़ने लग गए ! आज वर्षों के बाद उन्होंने अपने सिरों को कंघी लगाई थी, कि लटी में धमेला लगाया था, कि इंगूर-सिन्दूर के टीके, पिठाँ की लीरु, अक्षतों के अभिषेक लगाए थे—कि, चार चाण्डाल मल्लों की आज्ञा से तब तक किसी को सिंगार करने का अधिकार नहीं था, जब तक कि राजा कालीचन्द उनको टक्कर के पहलवान न दे !

और पहलवानों के नाम पर चाण्डाल मल्लों ने पडियारकोट के पराक्रमी जगती पडियार, चम्पावत के सालू-पालू गल्लेदारों के भी ककड़ी के जैसे चीरे बना दिए थे ! गिरिखेत में रहने को उन्हें ठौर दी गई थी, मगर उसे छोड़कर, चम्पावत नगरी में आसन बैठ गए थे, कि उन्होंने चम्पावत नगरी के चारों दिशा-द्वारों की दरबानी से बिना वंश-परम्परा की राजशाही पाई थी !···कि, कहाँ वे राखवारी-खाकवारी

जोगियों के मंत्रपूत मल्ल थे, कि कहाँ बावन होरों की राजसभा में राजरानियों से अपनी तेल-मालिश करवाते थे, कि जब नीच को ऊँचा आसन मिलता है, तो वह आकाश की ओर मुँह करके थूकने लगता है !

···मगर, आज चार भाई मल्लों की चाण्डाल-चौकड़ी का चित्त भी चलायमान हो गया, कि 'अगर पंचनाम देवताओं को जोशी दीवान ला रहा होता, तो उनके चिमटों की-ही छणावक्-छणावक् सुनाई पड़ती, कि ये युद्ध-पर्व के जैसे प्रचण्ड नाद चारों दिशाओं से फूट रहे हैं, तो ऐसा लग रहा है, जैसे हमारे चारों ओर बजन्त्रियों का घेरा पड़ रहा है !'

"क्यों, रे राजा कालीचन्द ?···हमने तुझसे क्या मल्ल-वचन कहे थे, कि जब तक हमारी टक्कर के योद्धा नहीं देगा, तब तक तेरे राज में सारे सिंगार, सारे शुभ पर्व वर्जित रहेंगे। आज ये नगाड़े-दमुवे कौन बजा रहे हैं, क्यों बजा रहे हैं, कि तेरे राज-पाट में तो बाजा-गाजा वर्जित करवा रखा था हमने ?"—चारों भाई मल्लों ने राजा कालीचन्द को धमकाना आरम्भ कर दिया।

"सुनो हो, चार भाई मल्लो !"—राजा कालीचन्द आज बारह वर्षों के बाद राजसी-कंठ से बोला, कि आज तक तिरजाट-कंठ से बोलता था।

"सुनो, रे चार भाई मल्लो !"—राजा कालीचन्द बोला—"अब जो बाजे-गाजे का लश्कर इधर को बढ़ रहा है, इसकी तो मैं कुछ नहीं जानता, कि क्या कौतुक रच रहे हैं आज पंचनाम देवता ·· मगर घड़ी-भर पहले जो रणकोटी-नगाड़ा गूंज रहा था, वह बाईस भाई बफौलों के बफौल-चौंतरे पर धरा हुआ उनका वीरवंशी-तेलकूट नगाड़ा है ! और जब बफौलवंशी युद्धपर्व न्योतते हैं, तो पहले सवा-सवा मन के सानगू-सोटों से उसी रणकूट नगाड़े पर नौबत जगाते हैं और संग्रामकोटी-बाना धारण करते हैं, कि—सुनो, रे चार भाई मल्लो !—आज अवश्य ही कोई बफौलवंशी-बाँकुरा गढ़ी चम्पावत के अदिन टालने को आ रहा है, कि तुम्हारी रसोई पर भी राजा इन्द्रदेव का वज्र नहीं गिरा था,

वफौलों की लुवासार-गुलेल का वारहविसी का गोसा ही गिरा था !"

ओहो रे, काले बादलों के बीच की उजली किरन-जैसी हँसी आज बारह वर्षों के वाद राजा कालीचन्द के अधरों पर फूटी, कि—"सुनो, हो चार भाई मल्लो ! मैं आज तक मरी हुई उमर जी रहा था, कि मेरे अन्याय की आग में बाईस भाई वफौलों का वंश-नाश हो गया था। तिरिया के चटुल-चरित्र के प्रपंच में मैं ऐसा तिरजाट बन गया था, कि धरम की बात बिसर गया, पाप के समुन्दर में डूब गया था !···मगर अब मर करके भी सुख पाऊँगा, कि मेरी आँखों के सामने मेरी प्रजा के प्राण हरे जाते थे, मगर मैं चोर के संगी-कुत्ते-जैसा तुम्हारे सामने बैठा रहता था !···आज वफौलवंशी कोई···कोई क्या, लली दूबकेला की दूर्वा-जड़ी अमर रह गई है, शायद—कि, बाईस भाई वफौलों का वंशवर ही गढ़ी में आ रहा है, कि वह अपना पितरऋण उतारने को मेरा वंश-नाश तो करेगा ही···मगर, तुम्हारा अन्यायी-आसन भी उठाएगा ! मैं वफौलवंशी के चरणों पर हाथ रखूंगा, एक भिक्षा यह मागूंगा, कि वह मेरा वंश-उजाड़ करने से पहले एक वार तुम्हारा भूसा बनता दिखा दे, मेरी आंखों को, कि मैं अपनी प्रजा के प्राणों को पुलकित होते देखूंगा, तो सुख की मौत मरूँगा !"

हरि, हे हरि !

चारों चाण्डाल मल्ल क्या वचन बोलने लगे—"सुन, रे तिरजाट राजा कालीचन्द ! बहुत पिनकट्टे की जैसी उछाल ऊपर को मत मार, कि आने दे तेरे वफौलवंशी-पैंग को !···अरे, मूरख राजा ! बाईस वफौलों को मरे बारह वर्ष ही पूरे हुए हैं अभी तो ! क्या तो उनका बारह वर्षों की कोंली उमर का बालक होगा और क्या वह हम चार भाई मल्लों से अकेला पार पाएगा, कि हम उसको चीरने में ककड़ी चीरने का समय भी नहीं लगाएँगे, कि—ठहर, ठहर, रे तिरजाट राजा कालीचन्द !—तेरा भुर्ता भी उसी की चटनी के साथ···"

●

40

बफौलवंशी-हलिया और बिना पूँछ के बैल

अहारे, जैसे-जैसे बफौलवंशी-बाँकुरे का अजरखूंठ अश्व गढ़ी के नगर-हाटों में पहुँचने लगा, तैसे-तैसे 'विजयी होना, हमारे बफौलवंशी, कि तुझे हमारे पुण्य लग जाएँ !' की जै-जैकार होने लगी, कि बफौल-वंशी-बाँकुरे के गढ़ी में आने की सूचना कुसुमगंधिला बयार-झोंकों के साथ फैलने लगी ।

बफौलवंशी-पूत के पाँव क्या पड़े गढ़ी के आँचल में, कि फगनौटी-ऋतु के बुरूँश-वन-सी फूलने लगी चम्पावत नगरी ! घड़ी-भर में ही पूरी चम्पावत नगरी में नर-नारियों का रेला-पेला लग गया, कि जिस गढ़ी चम्पावत के लोगों की चार भाई मल्लों के त्रास के कारण अपनी

ही ऊँचाई-भर चलने में भी फूंक सरकती थी—आज उसी गढ़ी कि चम्पावत के लोग नगरी बाँस-ऊँची अटारियों पर चढ़ गए, कि—वफौल-वंशी, हमारे वफौलवंशी !

और राजा कालीचन्द ने अपने सतखण्डी-एकखण्डी महलों की अटारियाँ चन्द्रमुखी-दीपकों से भरवा दीं, कि साँझ-सूरज के अस्त होते ही रुपहली बातियाँ जलाई जाएँगी !···

चार भाई मल्ल रोष-तोष के मारे अपने पाँवों को बावन हौरों की सभा में पटकने लगे, कि संगमरमरी-स्तम्भों में दरार पड़ने लग गई—"अच्छा, रे कालीचन्द राजा ! आने दे तेरे वफौलवंशी-छोरे को, कि तेरे ही सामने मूठ से पिचकाकर, उसके सिर की गुद्दी निकालेंगे, कि तेरा यह उछलना-कूदना अपने-आप ही ठौर पर थिरा जाएगा !"

* * *

एहो, अजरखूँठ अश्व की पीठ से उतरकर, जब अजित वफौल बावन हौरों की सभा में पहुँचा, तो उसकी दीठ-लजाती बल-विक्रम की बाँकी देह-यष्टि को देखकर, चार भाई मल्लों की आँखें भी चार क्षण टकटकी बँधी ही रह गई, कि—अहारे, पूत क्या है, पितरों को भी मात करने वाला है !

और जो चाण्डाल मल्ल राजा कालीचन्द को भी 'कलुवा रे !' कहकर ही पुकारते थे, वे हाथ उठाकर जोहार बजाने लगे, कि 'राम-राम हो, वफौलवंशी बाँकुरे !'

"राम-राम, हो चार भाई मल्लो !" —अजित वफौल ने जोहार दी।

अजित वफौल ने पूछा—"एहो, चार भाई मल्लो, पंचनाम देवों के मंत्रपूत हो तुम, कि एक राम-राम उनके नाम की लो !··· सुनो, हो चार भाई मल्लो ! मैं वफौलवंशी-बालक तुम चार भाई मल्लों

को मल्ल-युद्ध को न्यौतता हूँ, क कुश्ती कहाँ खेलोगे, गढ़ी चम्पावत के नगर-हाटों में, कि गिरिखेत के दोहलिया-खेतों[1] में !"

एहो, चार भाई मल्लों की आज सुदशा रूठ गई थी, मंगलपाती फट गई थी, कि वचन कैसे ओछे बोले—"सुन, रे वफौलवंशी छोरे ! जैसे आचमन-भर पानी के लिए छोटा सोता छोड़ के, वड़ी गंगा की ओर कोई नहीं जाता, ऐसे ही, तुझ कल के छोरे के लिए हम मल्ल-क्षेत्र क्या ढूंढेंगे ? सुन, रे छोरे ! तू गात का वहुत गुदगुदा, स्वरूप का वहुत सुन्दर है, कि तुझ पर हम चार भाई मल्लों को भी दया आ रही है। जा, रे छोरे ! इस राजा कालीचन्द कलुवा चाकर के कारण क्यों अपनी दुधैली-हँसी, रुपहली-काया का सत्यानाश करवाता है, कि इसी तिरजाट राजा कालीचन्द ने तेरे पिताजनों को विश्वासघात की मौत मारा था !—जा, वफौलवंशी ! एक वार तेरे पितर वफौलों ने हमें प्राण-दान दिया था, एक वार हम तुझे देते हैं, कि—जा, अपनी वफौलीकोट में गाय-वकरियाँ चराना, हल जोतना, कि जव सोलह श्राद्धों का पर्व आएगा, तो तू वाईस श्राद्ध करना !···इस कठुवा राजा कालीचन्द ने हमसे टक्कर लेने के लिए धौणीकोट के धौण, सौनडुंगर के सौन वुलाए, कि डोटीगढ़ी के धामी, वीराण के वीर वुलवाए, कि साल-पालू गल्लेदार और जगती पडियार पहलवान न्यौते और सवकी जड़ खुदवाके निर्वंश करवा दिया ! हम तो पंचनाम देवों के पंचपूत हैं, कि हमारे वल-विक्रम से पार कौन पा सकता है ? हमारी हुँकार सुनते ही, वड़े-वड़े योद्धाओं के कंधों की चमरोटी थरथराकर, कमर तक उतर जाती है !····जा, रे छोरे ! वंश में का एक नामलेवा-काठदेवा तू ही रह गया है, कि अपनी खैर मना, वफौलीकोट को लौट जा !"

एहो, कथा के सुनने वालो !

---

1. इतना वड़ा खेत, कि जिसे दो जोड़ी वैल एक पूरे दिन में जोत सकें।

वीरवंशी बालक अजित बफौल क्या सोचने लगा, कि मुँह से बखानने से रणबांकुरा-रक्त अशुद्ध होता है, कि सच्चे योद्धा सदा 'लकड़गिडा सामने है, तो कुल्हाड़ी की धार औरों को क्या दिखानी ?' वाली कहावत को प्रत्यक्ष किया करते हैं।

अहारे, लहरीले-पुट्ठे चौड़े किए, भँवरीले-कंधों की मँगनोटी बिजवार-सिगोड़ी[1]-जैसी ऊपर उठाई बफौलवंशी बाँकुरे ने, कि प्रलाप करते पूर्विया मल्ल से अपनी पिनालू[2]-पात-चौड़ी हथेली मिलाई, कि पूर्विया मल्ल बिना माँ-बाप के लावारिस बालक-जैसा रोने लग गया, कि—एक हाथ तो बफौल-ढूंगी को पहले ही चढ़ चुका था, आज दूसरा हाथ भी गया !

पूर्विया मल्ल को रोते-रिरियाते देखा, तो बफौलवंशी बालक हँस पड़ा, कि—"सुनो, हो चार भाई मल्लो ! पितर-समान हो तुम लोग भी मेरे, कि बफौलीकोट में हल जोत खाने की सलाह देते हो···एहो, अन्यायी पितरो !···आज पहले मैं तुम लोगों की ही हलजोत लगाऊँगा, कि तुम चार बिना पूंछ के बैलों को गिरिखेत में जोतूंगा, कि तुम बिना पूंछ के बैलों को हल जोतते देख-देखकर, हमारी बफौलीकोट के बैल हल की लीक ठीक से पकड़ना सीखेंगे !"



1. सांड के जैसे सींग। 2. घुइयां।

41

भोर की चार किरणें, रमौलिया के चार आँखर

एहो, कथा के ठाकुरो !

भोर की चार किरणें ही उजियाली फैलाती हैं। रमौलिया के चार आँखरों में कथा पूरी यों होती है, कि या कुश्ती चार भाई मल्लों ने पंचाचूली पर्वत की गुरुस्थली में ही खेली थी, कि वन के वानरों को फलों का खाना प्राणघाती बन गया था ! कि, या कुश्ती आज अजित बफौल ने ही उन्हें खिलाई, कि गढ़ी से ठोकते-पीटते गिरिखेत में पहुँचाया, कि चार बिना पूंछ के बैलों को हलजोत लगाना शुरू कर दिया, कि रमौलिया धन्य-धन्य कहता है, बफौलवंशी-आँकुरे के पराक्रम को !

* * *

अहारे, अजित वफौल, कि वीरवंशी हलिया !

धिक्कार, धिक्कार, धिक्कार !

एहो, चार भाई मल्ल, कि विना पूंछ के बैल !

कथा के ठाकुरो हो, रमौलिया अपनी दो अंगुल-भर चौड़ी वाणी से कैसे वफौलवंशी-रणवांकुरे का बल-विक्रम बखाने, कि गढ़ी चम्पावत नगरी से लेकर के गिरिखेत तक की मीलों चौड़ी धरती-माटी थरथरा गई, बयार-पाटी बौरा गई, कि मेरे वफौलवंशी-बांकुरे के बल-विक्रम को देखकर, आँखों की ज्योति धन्य होती है, मगर मुख के बोल बिसर जाते हैं !

अहारे, जिन चार भाई मल्लों के पराक्रम से सारी काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ थरथराती थी, कि जिन मल्लों की ऊँची हाँक सुनकर के बड़े-बड़े योद्धाओं के कंधों की चमरौटी खिसककर कमर पर पहुँच जाती थी—आज उन्हीं चार भाई मल्लों को मेरा वफौलवंशी पूत गढ़ी चम्पावत से हाँकता-धपाता गिरिखेत तक ले गया, कि पूर्विया मल्ल को कंधा पकड़कर दाई दिशा दिखाने लगा—पूर्विया मल्ल रे, होट, मेरे विना पूंछ के बैल !

अहारे, पश्चिमी मल्ल को बाईं दिशा दिखाने लगा—पश्चिमी मल्ल रे, पलट मेरे विना सींगों के बैल !

धि-रि-रि-रि-रि-

अहारे, आज मेरा वफौलवंशी रणवाँकुरा चार भाई मल्लों को चारों दिशाओं के भरपूर दर्शन कराने लग गया, कि चारों भाई मल्ल मुख से गाज, नाक से पानी बहाने लग गए, कि गलुवा बैलों-जैसे बीच गिरिखेत में लमलेट होने लग गए !

एहो, रणवाँकुरा अजित वफौल मुट्ठी-चोट क्या मारने लगा, कि चार भाई मल्लों के महामुण्डों की गुद्दी फूटकर ऐसे बाहर निकलने लगी, कि जैसे बड़ी जात की खुंडी भैंस के पाँव के नीचे दबने पर छोटी जात के भुरभुरिया मेंढक की गुद्दी बाहर निकलती है !

उत्तरी मल्ल, कि दक्षिणी मल्ल—
कि, राम-नाम सत्त है !
अ-र-र-र-र—
तीसरा भाई दक्षिणी मल्ल—
कि, सत्त बोलो, गत्त है !
एहो, कथा के ठाकुरो !

तीन तिकट, महा विकट मल्लों को वीरवंशी-बाँकुरे ने गिरिखेत के ही गहरे खड्डों में दबा दिया, कि चौथा भाई मल्ल हाथ जोड़ता, शीश नवाता वफौलवंशी की शरण आ गया—"शरण दे हो, वफौलवंशी बाँकुरे, कि एक बार शरण तुम्हारे पितरों ने दी थी, कि एक बार शरण पूत को भी देनी चाहिए ! सुन, हो वफौलवंशी ! शीश झुकाता हूँ, चरण पूजता हूँ तेरे, कि जैसा बाँका बल-विक्रम तेरा देखा है मैंने, ऐसा किसी ने तीन लोक, चौदह भुवनों में नहीं देखा होगा, कि मुझे प्राण-दान दे !··· मुझे प्राणदान दे, हो वफौलवंशी, कि मैं संन्यासी-चोला धारण करूँगा, चिमटा-कमण्डल पकड़ूँगा, कि तीर्थ-तीर्थ-घाट-घाट डोलूँगा और तेरे बल-विक्रम की वीर-गाथा के छंद चारों दिशाओं में फैलाऊँगा, मेरे वीरवंशी स्वामी !"

अहारे, बल-विक्रम के बाँकुरे वफौलवंशी ने मारण-मुट्ठी ऊपर ही रोक दी, दुधैली-हँसी बिखेर दी, कि—जा, रे पूर्विया मल्ल, शरण देता हूँ, कि न देने से मेरे पितर मुझे प्यार नहीं करेंगे !·· कि, शरण में आए शत्रु को मारने से भी वीरवंशी वफौलों के बल-विक्रम को कलंक लगता है !

अहारे, मेरे वफौलवंशी !

अहारे, मेरे रणबाँकुरे !

अहारे, काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की गैया-मैया के लाड़ले, कि अपने कथा-चाकर रमौलिया की दण्डवत स्वीकार कर ले, कि तेरी वीरगाथा के आँखरों से मेरी वाणी सुफल होती है, मेरे स्वामी !

●

42

सुख-सरोवर के हंस

सत्, रे सत् !

एहो, कथा के ठाकुरो !

सत् रह जाए बफौलीकोट की धरती-माटी, [illegible] कि जिसमें रणबांकुरे अजित बफौल-जैसे सपूत ने जन्म लिया, [illegible] छत्र-मुकुट का राजकुंवर-जैसा सबको सुख पहुंचाने [illegible] !

एहो, मेरे कथा-रसिको !

बफौलवंशी रणबांकुरे ने चार [illegible] काली कुमाऊं, माली पछाऊं की धरती-माटी [illegible] मिटाया। यहां चम्पावत नगरी की [illegible] मुकुटधारी राजा [illegible] राजकुंवर को [illegible] तेरे चरणों की [illegible]

का प्राणघाती हूँ मैं—मुझे मेरी पापी काया से मुक्ति दे, अपना पितर-ऋण उतार ले ! चार चाण्डाल मल्ल तूने साध दिए, कि मैंने अपनी आँखों की ज्योति सफल कर ली है, गढ़ी चम्पावत की राज-सभा से उनकी चाण्डाल-चौकी उखड़ती देख ली है !···कि, अपनी प्रजा को सुख पाते देख लिया हैं !···मेरी सारी इच्छाएँ तृप्त हो चुकी हैं। एक अतृप्ति निस्संतान रहने की थी, तो राजकुँवर विमलचन्द का मुख देख लिया है। मगर एक शूल-संताप बाईस भाई बफौलों के घात का रह गया है, कि उसे तू हटा दे, मेरे लाड़ले, कि तेरे हाथों से मुक्ति पाकर, मेरी पापिष्ठा देह भी पवित्र हो जाएगी !"

अहारे, लली दूबकेला देखती है, राजमाता भद्रा देखती हैं और दीवान जोशी विज्ञानचन्द्र देखते हैं, कि अपने ही चपल-चंचल-चटुल तिरिया-चरित्र की चिता में बिना आग की जलती, राख होती डोटियाली रानी रूपाली देखती है—कि, कहीं बफौलवंशी पूत को अपने पितरों के प्राणघात की सुधि बौरा न दे, कि कहीं वह धरम-माता को दिया हुआ वचन बिसर न जाए !

मगर, अहारे, वीरवंशी सपूत दिया हुआ एक वचन नहीं बिसरा, कि काया का कोमल, वाणी का मधुर बन गया—"सुनो हो, महाराज कालीचन्द ! जनम-माता लली को वचन दिया था, कि जिसने मेरे पितरों से विश्वासघात किया है, उसको बिना बीज-वंश का बनाऊँगा, पितर-ऋण से उबरूँगा !···मगर, धरम-माता को एक वचन हार चुका हूँ, कि उसके आँचल के पत, सिर के छत्र पर कोप-दृष्टि नहीं डालूँगा। ···सो, सुनो हो, महाराज कालीचन्द ! पितर-घात की बात भूलता हूँ, धरम-माता को दिए वचन की लाज रखता हूँ··· मगर आज से काली कुमाऊँ, पाली पछाऊँ की इस राजधानी के सुवर्णपीठ-सिंहासन पर राजकुमार विमलचन्द बैठेंगे, आप नहीं, कि इस गढ़ी चम्पावत नगरी की मैया महारानी भद्रादेवी होंगी, कि आपकी लाड़ली रानी रूपाली नहीं !"

अहारे, चपला-चंचला-चटुली रानी रूपाली गात की झिरझिरी,

वाणी की दीन बन करके आगे सरक आई, कि—सुन हो, बफौलवंशी बेटे, एक वचन मैं भी माँगती हूँ, कि मेरी भिक्षा नहीं टालना, लाड़ले, कि वीरवंशी-पूतों की वाणी कुआंखर 'ना' से अपवित्र होती है !...सुन हो, मेरे छौने, कि बाईस भाई बफौलों का सुख नहीं पा सकी थी, तो सत्यानाशिनी तिरिया बन गई थी !.. तू बफौलवंशी अगर मुझे 'माँ' कहकर पुकार ले, तो पिछला सारा दर्प-संताप विसर जाऊँगी और एक यह सुख अपने हिस्से लगा लूँगी, कि तू अकेली लली दूधकेला की कोख से नहीं, मेरी कोख से भी जनमा है !...कि, मेरे पूत, पाप के वचन क्षमा कर देना, कि मैं अपनी कोख से तुझ-जैसा ही पराक्रमी पूत पाने को ललकती थी, कि सिर्फ इसीलिए बाईस भाई बफौलों का सुख पाना चाहती थी !"

अहारे, वीरवंशी पूत मेरा अजित कुँवर रुपाली रानी को भी दाहिना हो गया, कि—माँ हो, 'छौना' कहकर पुकारने से नारी की वाणी का विष भी अमृत बन जाता है, कि तुमने मुझे माँ की ममता से पुकारा है, तो मैं भी तुम्हारे चरण छूता हूँ, कि एक धरम-माता मैया महारानी हैं, कि दूसरी धरम-माता तुम्हें भी मानता हूँ !

"धन्य हो, मेरे बफौलवंशी !"—महाराजा कालीचन्द शीश झुकाते हैं, जय बोलते हैं।

"धन्य हो, मेरे बफौलवंशी छौने !"—मैया महारानी हाथ उठाती हैं, शीश पूजती हैं।

"धन्य हो, हमारे बफौलवंशी लाड़ले !"—जोशी दीवान के साथ, गढ़ी चम्पावत नगरी की प्रजा जय-जयकार करती है।

सपूत को जनम देकर सुख पाने वाली लली दूधकेला का कंठ अघा गया है, वाणी गद्गद् हो गई है, कि आँखों से गंगाजल की धार टपकती है—जीते रहना, सुख पाना, मेरे बफौलवंशी लाल !

अहारे, जैसे गंगा मैया, जमुना मैया को जनम देने से हिमाल-पार्वती की शोभा बढ़ती है, ऐसे ही, आज आनन्द के आँसू बहाने से वीरमाता

लली दूधकेला शोभा पा रही है।

अहारे, लली का लाड़ला पूत, मेरी वीर-कथा का स्वामी वफोल-वंशी किलकता है, मैया की छाती से लगता है, कि एक आँख गंगा, एक आँख जमुना बहाने वाली वीरमाता लली दूधकेला विहँसती है, कि उदयमुखी-सूरज-किरन की जैसी उजास बिखेरती है।

कि, एहो कथा के लाड़लो !

हंस कोई दुर्लभ पंछी नहीं है, कि निर्मलजल के कमलकोषी सरोवरों में राजहंसों की पाँतों-की-पाँतें तैरा करती हैं !…मगर, सबसे ऊँची नस्ल के दुर्लभ राजहंस वीरमाता लली दूधकेला के मुख-सरोवर में ही पाए जाते हैं, कि जिनकी रजतवर्णा-पाँत से मोतियों की उजास भी धुँधली पड़ जाती है, कि जिनकी गाँठ-गाँठ से वीरवंशी सपूत जनमाने का सुख आँचल के अक्षतों-जैसा झाँकता है !

43

कि, तुम्हारे नाम का चन्द्रमुखी-दीपक—

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए मेरे बफौलवंशी कुंवर अजित की वीरगाथा की अंखरोटी का, जिसके छंदों को अपने वाणी के वचन सौंपकर, रमौलिया अपना कुटुम्ब पालता है, और अपने कथा-ठाकुरों के कान पवित्र करता है—कि, वीर-गाथा की अंखरोटी सुनने से कानों का मैल छूटता है, आंखों की ज्योति बढ़ती है !

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए, इस घर की मैया-गैया और घर के स्वामी का, कि जिन्होंने वीरगाथा की सुवेला न्योती है, कि पंचनाम देवों की सेवा में चन्द्रमुखी-दीपक की ज्योति सौंपी है, कि इन्हें अजित कुंवर-जैसा हिया का हुलास, मन का मोद बढ़ाने वाला सपूत मिले !

सत्, रे सत् !

सत् रह जाए, पंचाचूली पर्वत की गुरुस्थली के राखवारी-खाकधारी कल्याणकारी पंचनाम देवों का, कि जो अपने चमत्कारी चिमटे बजाते हैं, हम नर-वानरों को चमत्कार दिखाते हैं, कि फूल-पाती, दीप-बाती की सेवा स्वीकारते हैं—गोठ की गैया, गोदी के बालक की उम्र बड़ी कर जाते हैं !···

कि, एहो पंचनाम देवो !

इस वीर-गाथा की वेला हम तुम्हारे नाम का चन्द्रमुखी-दीपक जलाते हैं, कि दाहिने हो जाना, हो पंच परमेश्वरो !

···कि, रमौलिया शीश झुकाता है, चरण पूजता है तुम्हारे, स्वामी !

सत् रह जाए, पंचाचूली पर्वत की गुरुस्थली के राखवारी-खाकधारी कल्याणकारी पंचनाम देवों का, कि जो अपने चमत्कारी चिमटे वजाते हैं, हम नर-वानरों को चमत्कार दिखाते हैं, कि फूल-पाती, दीप-बाती की सेवा स्वीकारते हैं—गोठ की गैया, गोदी के बालक की उम्र बड़ी कर जाते हैं !...

कि, एहो पंचनाम देवो !

इस वीर-गाथा की वेला हम तुम्हारे नाम का चन्द्रमुखी-दीपक जलाते हैं, कि दाहिने हो जाना, हो पंच परमेश्वरो !

...कि, रमौलिया शीश झुकाता है, चरण पूजता है तुम्हारे, स्वामी !